भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

२०३६
१० २ ६८

सदाचारका तावीज़

हरिशंकर परसाई

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक - २४८
सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

कैफ़ियत

एक सज्जन अपने मित्रसे मेरा परिचय करा रहे थे—यह परसाईजी हैं। बहुत अच्छे लेखक हैं। ही राइट्स फनी थिंग्ज़।

एक मेरे पाठक (अब मित्रनुमा) मुझे दूरसे देखते ही इस तरह हँसीकी तिड़तिड़ाहट करते मेरी तरफ बढ़ते हैं, जैसे दिवालीपर बच्चे 'तिड़तिड़ी'को पत्थरपर रगड़कर फेंक देते हैं और वह थोड़ी देर तिड़तिड़ करती उछलती रहती है। पास आकर अपने हाथोंमें मेरा हाथ ले लेते हैं और ही-ही करते हुए कहते हैं—वाह यार, खूब लिखे। मज़ा आ गया। उन्होंने कभी कोई चीज़ मेरी पढ़ी होगी। अभी सालोंसे कोई चीज़ नहीं पढ़ी; यह मैं जानता हूँ।

एक सज्जन जब भी सड़कपर मिल जाते हैं, दूरसे ही चिल्लाते हैं—'परसाईजी नमस्कार! मेरा पथप्रदर्शक पाख़ाना!' बात यह है कि किसी दूसरे आदमीने कई साल पहले स्थानीय साप्ताहिकमें एक मज़ाकिया लेख लिखा था, 'मेरा पथप्रदर्शक पाख़ाना।' पर उन्होंने ऐसी सारी चीजोंके लिए मुझे ज़िम्मेदार मान लिया है। मैंने भी नहीं बताया कि वह लेख मैंने नहीं लिखा था। बस, वे जहाँ मिलते हैं—'मेरा पथप्रदर्शक पाख़ाना' चिल्लाकर मेरा अभिवादन करते हैं।

कुछ पाठक यह समझते हैं कि मैं हमेशा उचक्केपन और हलकेपनके मूडमें रहता हूँ। वे चिट्ठीमें मखौल करनेकी कोशिश करते हैं! एक पत्र मेरे सामने है। लिखा है—कहिए जनाब, बरसातका मज़ा ले रहे हैं न! मेढकोंकी जलतरंग सुन रहे होंगे। इसपर भी लिख डालिए न कुछ।

बिहारके किसी क़स्बेसे एक आदमीने लिखा कि तुमने मेरे मामाका जो फ़ारेस्ट अफ़सर हैं मजाक़ उड़ाया है। उनकी बदनामी की है। मैं तुम्हारे खानदानका नाश कर दूँगा। मुझे शनि सिद्ध है।

कुछ लोग इस उम्मीदसे मिलने आते हैं कि मैं उन्हें ठिलठिलाता, कुलांचे मारता, उछलता मिलूँगा और उनके मिलते ही जो मजाक़ शुरू करूँगा तो हम सारा दिन दांत निकालते गुज़ार देंगे। मुझे वे गम्भीर और कम बोलनेवाला पाते हैं। किसी गम्भीर विषयपर मैं बात छेड़ देता हूँ। वे निराश होते हैं। काफ़ी लोगोंका यह मत है कि मैं निहायत मनहूस आदमी हूँ।

एक पाठिकाने एक दिन कहा—आप मनुष्यताकी भावनाकी कहानियाँ क्यों नहीं लिखते?

और एक मित्र उस दिन मुझे सलाह दे रहे थे—तुम्हें अब गम्भीर हो जाना चाहिए। इट इज़ हाई टाइम!

व्यंग्य लिखनेवालेकी ट्रेजडी कोई एक नहीं। 'फ़नी'से लेकर उसे मनुष्यताकी भावनासे हीन तक समझा जाता है। 'मज़ा आ गया'से लेकर 'गम्भीर हो जाओ' तककी प्रतिक्रियाएँ उसे सुननी पड़ती हैं। फिर लोग अपने या अपने मामा, काकाके चेहरे देख लेते हैं और दुश्मन बढ़ते जाते हैं। एक बहुत बड़े वयोवृद्ध गान्धीभक्त साहित्यकार मुझे अनैतिक लेखक समझते हैं। नैतिकताका अर्थ उनके लिए शायद गबद्दूपन होता है।

लेकिन इसके बावजूद ऐसे पाठकोंका एक बड़ा वर्ग है, जो व्यंग्यमें निहित सामाजिक-राजनीतिक अर्थ-संकेतको समझते हैं। वे जब मिलते या लिखते हैं, तो मज़ाक़के मूडमें नहीं। वे उन स्थितियोंकी बात करते हैं, जिनपर

मैंने व्यंग्य किया है, वे उस रचनाके तीखे वाक्य बनाते हैं। वे हालातोंके प्रति चिन्तित होते हैं।

आलोचकोंकी स्थिति कठिनाईकी है। गम्भीर कहानियोंके बारेमें तो वे कह सकते हैं कि संवेदना कैसे पिछलती आ रही है, समस्या कैसी प्रस्तुत की गयी है—वगैरह। व्यंग्यके बारेमें वह क्या कहे ? अक्सर वह यह कहता है—हिन्दीमें शिष्ट हास्यका अभाव है। (हम सब हास्य और व्यंग्यके लेखक लिखते-लिखते मर जायेंगे, तब भी लेखकोंके बेटोंसे इन आलोचकोंके बेटे कहेंगे कि हिन्दीमें हास्य-व्यंग्यका अभाव है), हाँ, वे यह और कहते हैं—विद्रूपका उद्घाटन कर दिया, पर्दाफाश कर दिया है, करारी चोट की है, गहरी मार की है, झकझोर दिया है। आलोचक बेचारा और क्या करे ? जीवन बोध, व्यंग्यकारकी दृष्टि, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवेशके प्रति उसकी प्रतिक्रिया, विसंगतियोंकी व्यापकता और उनकी अहमियत, व्यंग्य संकेतोंके प्रकार, उनकी प्रभावशीलता, व्यंग्यकार-की आस्था, विश्वास—आदि बातें समझ और मेहनतकी माँग करती हैं। किसे पड़ी है ?

अच्छा, तो तुम लोग व्यंग्यकार क्या अपने 'प्राफेट'को समझते हो ? 'फनी' कहनेपर बुरा मानते हो। खुद हँसाते हो और लोग हँसकर कहते हैं—मजा आ गया, तो बुरा मानते हो और कहते हो—सिर्फ मजा आ गया ? तुम नहीं जानते कि इस तरहकी रचनाएँ हलकी मानी जाती हैं और दो घडीकी हँसीके लिए पढ़ी जाती हैं।

[यह बात मैं अपने-आपसे कहता हूँ, अपने-आपसे ही सवाल करता हूँ।] जवाब : हँसना अच्छी बात है। पकौड़े-जैसी नाकको देखकर भी हँसा जाता है, आदमी कुत्ते-जैसा भौंके तो भी लोग हँसते हैं। साइकिल-पर डबल सवार गिरें, तो भी लोग हँसते हैं। संगतिके कुछ मान बने हुए होते हैं—जैसे इतने बड़े शरीरमें इतनी बडी नाक होनी चाहिए।

उससे बड़ी होती है, तो हँसी आती है। आदमी आदमीकी ही बोली बोले, ऐसी संगति मानी हुई है। वह कुत्ते-जैसा भौंके तो यह विसंगति हुई और हँसीका कारण। असामंजस्य, अनुपातहीनता, विसंगति हमारी चेतनाको छेड़ देते हैं। तब हँसी भी आ सकती है और हँसी नहीं भी आ सकती—चेतनापर आघात पड़ सकता है। मगर विसंगतियोंके भी स्तर और प्रकार होते हैं। आदमी कुत्तेकी बोली बोले—एक यह विसंगति है। और वनमहोत्सवका आयोजन करनेके लिए पेड़ काटकर साफ़ किये जायें, जहाँ मन्त्री महोदय गुलाबके 'वृक्ष' की क़लम रोपें—यह भी एक विसंगति है। दोनोंमें भेद है, गो दोनोंसे हँसी आती है। मेरा मतलब है—विसंगतिकी क्या अहमियत है, वह जीवनमें किस हद तक महत्त्वपूर्ण है, वह कितनी व्यापक है, उसका कितना प्रभाव है—ये सब बातें विचारणीय हैं। दांत निकाल देना, उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है।

—लेकिन यार, इस बातसे क्यों कतराते हो कि इस तरहका साहित्य हलका ही माना जाता है।

—माना जाता है, तो मैं क्या करूँ? भारतेन्दु युगमें प्रतापनारायण मिश्र और बालमुकुन्द गुप्त जो व्यंग्य लिखते थे, वह कितनी पीड़ासे लिखा जाता था। देशकी दुर्दशापर वे किसी भी क़ौमके रहनुमासे ज्यादा रोते थे। हाँ, यह सही है कि इसके बाद रुचि कुछ ऐसी हुई कि हास्यका लेखक विदूषक बननेको मजबूर हुआ। 'मदारी' और 'डमरू' 'टुनटुन' जैसे पत्र निकले और हास्यरसके कवियोंने 'चोंच' और 'काग' जैसे उपनाम रखे। याने हास्यके लिए रचनाकारको हास्यास्पद होना पड़ा। अभी भी यह मजबूरी बची है। तभी कुंजविहारी पाण्डेको 'कुत्ता' शब्द आनेपर मंचपर भौंककर बताना पड़ता है और काका हाथरसीको अपनी पुस्तकके कवरपर अपना ही कार्टून छपाना पड़ता है। बात यह है कि उर्दू-हिन्दीकी मिश्रित हास्य-व्यंग्य परम्परा कुछ साल चली, 'जिसने हास्यरसको भड़ौआ बनाया। इसमें बहुत कुछ हलका है। यह सीधी सामन्ती वर्गके मनोरंजन-

की ज़रूरतमें-से पैदा हुई थी। शौकत थानवीकी एक पुस्तकका नाम ही 'कुतिया' है। अज़ीमबेग चुग़ताई नौकरानीकी लड़कीसे 'फ़्लर्ट' करनेकी तरकीबें बताते हैं! कोई अचरज नहीं कि हास्य-व्यंग्यके लेखकोंको लोगोंने हल्के, ग़ैरज़िम्मेदार और हास्यास्पद मान लिया हो।

—और 'पत्नीवाद' वाला हास्यरस! वह तो स्वस्थ है? उसमें पारिवारिक-सम्बन्धोंकी निर्मल आत्मीयता होती है?

—स्त्रीसे मज़ाक़ एक बात है और स्त्रीका उपहास दूसरी बात। हमारे समाजमें कुचले हुएका उपहास किया जाता है। स्त्री आर्थिकरूपसे गुलाम रही, उसका कोई व्यक्तित्व नहीं बनने दिया गया, वह अशिक्षित रही, ऐसी रही—तब उसकी हीनताका मज़ाक़ करना 'सेफ़' हो गया। पत्नीके पक्षके सब लोग हीन और उपहासके पात्र हो गये—खासकर साला; जो हर आदमी किसी-न-किसीका साला होता है। इसी तरह घरका नौकर सामन्ती परिवारोंमें मनोरंजनका माध्यम होता है। उत्तर भारतके सामन्ती परिवारोंकी परदानशीन दमित रईसज़ादियोंका मनोरंजन घरके नौकरका उपहास करके होता है। जो जितना मूर्ख, सनकी और पौरुष-हीन हो, वह नौकर उतना ही दिलचस्प होता है। इसलिए सिकन्दर मियाँ चाहे काफ़ी बुद्धिमान् हो, मगर जान-बूझकर बेवकूफ़ बन जाते हैं क्योंकि उनका ऐसा होना नौकरीको सुरक्षित रखता है। सलमा सिद्दीक़ीने सिकन्दरनामामें ऐसे ही पारिवारिक नौकरकी कहानी लिखी है। मैं सोचता हूँ सिकन्दर मियाँ अपनी नज़रसे उस परिवारकी कहानी कहें, तो और अच्छा हो।

तो क्या पत्नी, साला, नौकर नौकरानी आदिको हास्यका विषय बनाना अशिष्टता है?

—'वल्गर' है। इतने व्यापक सामाजिक जीवनमें इतनी विसंगतियाँ हैं। उन्हें न देखकर बीवीकी मूर्खताका बयान करना बड़ी संकीर्णता है।

और 'शिष्ट' और 'अशिष्ट' क्या है? अकसर 'शिष्ट' हास्यकी माँग

वे करते हैं, जो शिकार होते हैं। भ्रष्टाचारी तो यही चाहेगा कि आप मुंशीकी या सालेकी मजाकका 'शिष्ट' हास्य करते रहें और उसपर चोट न करें—वह 'अशिष्ट' है। हमारे यहाँ तो हत्यारे 'भ्रष्टाचारी' पीड़कसे भी 'शिष्टता' बरतनेकी माँग की जाती है—'अगर जनाब बुरा न मानें तो अर्ज है कि भ्रष्टाचार न किया करें।' बड़ी कृपा 'होगी सेवकपर'। व्यंग्यमें चोट होती ही है। जिनपर होती है वह कहते हैं—'इसमें कटुता आ गयी। शिष्ट हास्य लिखा करिए।' मार्क ट्वेनकी वे रचनाएँ नये संकलनोंमें नहीं आतीं, जिनमें उसने अमरीकी शासन और मोनोपलीके बखिये उधेड़े हैं। वह उसे केवल शिष्ट हास्यका मनोरंजन देनेवाला लेखक बताना चाहते हैं—'दी डिलाइटेड मिलियन्स!'

—तो तुम्हारा मतलब यह है कि मनोरंजनके साथ ही व्यंग्यमें समाजकी समीक्षा भी होती है?

—हाँ, व्यंग्य जीवनसे साक्षात्कार करता है, जीवनकी आलोचना करता है, विसंगतियों मिथ्याचारों और पाखण्डोंका परदाफ़ाश करता है।

—यह नारा हो गया।

—नारा नहीं है। मैं यह कह रहा हूँ कि जीवनके प्रति व्यंग्यकारकी उतनी ही निष्ठा होती है, जितनी गम्भीर रचनाकारकी—बल्कि ज्यादा ही। वह जीवनके प्रति दायित्वका अनुभव करता है।

—लेकिन वह शायद मनुष्यके बारेमें आशा खो चुका होता है। निराशावादी हो जाता है। उसे मनुष्यकी बुराई ही दीखती है। तुम्हारी रचनाओंमें देखो—सब चरित्र बुरे ही हैं।

—यह कहना तो इसी तरह हुआ कि डॉक्टरसे कहा जाय तुम रुग्ण मनोवृत्तिके आदमी हो। तुम्हें रोग-ही-रोग दीखते हैं। मनुष्यके बारेमें आशा न होती, तो हम उसकी कमजोरियोंपर क्यों रोते? क्यों उससे कहते कि यार तू जरा कम बेवक़ूफ़, विवेकशील, सच्चा और न्यायी हो जा।

—तो तुम लोग रोते भी हो। मेरा तो खयाल था कि तुम सबपर हँसते हो।

—जिन्दगी बहुत जटिल चीज है। इसमें खालिस हँसना या खालिस रोना-जैसी चीज नहीं होती। बहुत-सी हास्य रचनाओंमें करुणाकी अन्तर्धारा होती है। चेखॅवकी कहानी 'क्लर्ककी मौत' क्या हँसीकी कहानी है? उसका व्यंग्य कितना गहरा, ट्रेजिक और करुणामय है। चेखॅवकी ही एक कम प्रसिद्ध कहानी है—"किरायेदार'। इसका नायक 'जोरूका गुलाम' है—बीवीके होटलका प्रबन्ध करता है। अपनी नौकरी छोड़ आया है। अब बीवीका गुलाम तो उपहासका ही पात्र होता है न। मगर इस कहानीमें यह बीवीका गुलाम अन्तमें बड़ी करुणा पैदा करता है। अच्छा व्यंग्य सहानुभूतिका सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।

—अच्छा यार, तुम्हें आत्म-प्रचारका मौका दिया गया था। पर तुम अपना कुछ न कहकर जनरल ही बोलते जा रहे हो। तुम्हारी रचनाओंको पढ़कर कुछ बातें पूछी जा सकती हैं। क्या तुम सुधारक हो? तुममें आर्यसमाजी-वृत्ति देखी जाती है।

—कोई सुधर जाय तो मुझे क्या एतराज है। वैसे मैं सुधारके लिए नहीं बदलनेके लिए लिखना चाहता हूँ। याने कोशिश करता हूँ। चेतनामें हलचल हो जाये, कोई विसंगति नजरके सामने आ जाये। इतना काफी है। सुधरनेवाले खुद अपनी चेतनासे सुधरते हैं। मेरी एक कहानी है 'सदाचारका तावीज'। इसमें कोई सुधारवादी संकेत नहीं है। कुल इतना है कि तावीज बाँधकर आदमीको ईमानदार बनानेकी कोशिश की जा रही है। (भाषणों और उपदेशोंमें) सदाचारका तावीज बाँधे बाबू दूसरी तारीखको घूस लेनेसे इनकार कर देता है मगर २९ तारीखको ले लेता है—उसकी तनख्वाह खत्म हो गयी। तावीज बँधा है,मगर जेब खाली है। संकेत मैं यह करना चाहता हूँ कि बिना व्यवस्थामें परिवर्तन किये, भ्रष्टाचारके मौके बिना खत्म किये और कर्मचारियोंको बिना आर्थिक सुरक्षा

दिये, भाषणों, सर्कुलरों, उपदेशों, सदाचार समितियों, निगरानी आयोगोंके द्वारा कर्मचारी सदाचारी नहीं होगा। इसमें कोई उपदेश नहीं है। सिर्फ़ विरोधाभासोंको सामने लाया गया है और कुछ संकेत किये गये हैं। उपदेशका चार्ज वह लोग लगाते हैं, जो किसीके प्रति दायित्वका कोई अनुभव नहीं करते। वह सिर्फ़ अपनेको मनुष्य मानते हैं और सोचते हैं कि हम कीड़ोंके बीच रहनेके लिए अभिशप्त हैं। यह लोग तो कुत्तेकी दुममें पटाखेकी लड़ी बांधकर उसमें आग लगाकर कुत्तेके मृत्यु-भयपर भी ठहाका लगा लेते हैं।

—अच्छा यार, बातें तो और भी बहुत-सी करनी थीं। पर पाठक बोर हो जायेंगे। बस एक बात और बताओ—तुम इतना राजनीतिक व्यंग्य क्यों लिखते हो?

—इसलिए कि राजनीति बहुत बड़ी निर्णायक शक्ति हो गयी है। वह जीवनसे बिलकुल मिली हुई है। वियतनामकी जनतापर बम क्यों बरस रहे हैं? क्या उस जनताकी अपनी कुछ जिम्मेदारी है? यह राजनीतिक दांव-पेंचके बम हैं। शहरमें अनाज और तेलपर मुनाफ़ाखोरी कम नहीं हो सकती क्योंकि व्यापारियोंके क्षेत्रोंसे अमुक-अमुकको चुनकर जाना है। राजनीति—सिद्धान्त और व्यवहारकी—हमारे जीवनका एक अंग है। उससे नफ़रत करना बेवक़ूफ़ी है। राजनीतिसे लेखकको दूर रखनेकी बात वही करते हैं, जिनके निहित स्वार्थ हैं, जो डरते हैं कि कहीं लोग हमें समझ न जायें। मैंने पहले भी कहा है कि राजनीतिको नकारना भी एक राजनीति है।

—अच्छा, तो बातको यहीं खत्म करें। तुम अब राजनीतिपर चर्चा करने लगे। इससे लेबिल चिपकते हैं।

—लेबिलका क्या डर! दूसरोंको देशद्रोही कहनेवाले, पाकिस्तानको भूखे बंगालका चावल 'स्मगल' करते हैं। ये सारे रहस्य मुझे समझमें आते हैं। मुझे डरानेकी कोशिश मत करो। ■ ■

१ : सदाचारका तावीज़
७ : एकलव्यने गुरुको अँगूठा दिखाया
१४ : प्रेमियोंकी वापसी
२१ : उखड़े खम्भे
२७ : भगतकी गत
३३ : टार्च बेचनेवाले
३९ : मन्नू भैयाकी बारात
४९ : एक ज़ोरदार लड़केकी कहानी
५५ : भोलारामका जीव
६२ : एक फ़िल्म-कथा
७१ : एक सुस्त आदमीकी कहानी
७८ : हनुमान्की रेल-यात्रा
८३ : मुण्डन
८६ : आत्म-ज्ञान वलय
९४ : गान्धीजीका शाल
९९ : एअरकण्डीशण्ड आत्मा
१०६ : असहमत
११४ : दस दिनका अनशन
१२४ : अमरता
१२९ : होनहार

१२७ : हृदय
१२८ : उपदेश
१२९ : दुःख
१३० : दया
१३१ : दण्ड
१३२ : शौर्य
१३३ : मित्रता
१३४ : देवभक्ति
१३५ : जाति
१३६ : शिष्ट
१३७ : खेती

सदाचार
का
तावीज़

[व्यंग्य-कथाएँ]

सदाचारका तावीज़

एक राज्यमें हल्ला मचा कि भ्रष्टाचार बहुत फैल गया है।

राजाने एक दिन दरबारियोंसे कहा—"प्रजा बहुत हल्ला मचा रही है कि सब जगह भ्रष्टाचार फैला हुआ है। हमें तो आज तक कहीं नहीं दिखा। तुम लोगोंको कहीं दिखा हो तो बताओ।"

दरबारियोंने कहा—"जब हुजूरको नहीं दिखा तो हमें कैसे दिख सकता है?"

राजाने कहा—"नहीं, ऐसा नहीं है। कभी-कभी जो मुझे नहीं दिखता, वह तुम्हें दिखता होगा। जैसे मुझे बुरे सपने कभी नहीं दिखते पर तुम्हें तो दिखते होंगे।"

दरबारियोंने कहा—"जी, दिखते हैं। पर वह सपनोंकी बात है।"

राजाने कहा—"फिर भी तुम लोग सारे राज्यमें ढूंढ़कर देखो कि कहीं भ्रष्टाचार तो नहीं है। अगर कहीं मिल जाये तो हमारे देखनेके लिए नमूना लेते आना। हम भी तो देखें कि कैसा होता है।"

एक दरबारीने कहा—"हुजूर, वह हमें नहीं दिखेगा। सुना है, वह बहुत बारीक होता है। हमारी आँखें आपकी विराटता देखनेकी इतनी आदी हो गयी हैं कि हमें बारीक चीज नहीं दिखती। हमें भ्रष्टाचार दिखा भी तो उसमें हमें आपकी ही छवि दिखेगी क्योंकि हमारी आँखोंमें तो आपकी ही सूरत बसी है। पर अपने राज्यमें एक जाति रहती है जिसे 'विशेषज्ञ' कहते हैं। इस जातिके पास कुछ ऐसा अंजन होता है कि उसे आँखोंमें आँजकर वे बारीकसे बारीक चीज भी देख लेते हैं। मेरा निवेदन

है कि इन विशेषज्ञोंको ही हुजूर भ्रष्टाचार ढूँढ़नेका काम सौंपें।"

राजाने 'विशेषज्ञ' जातिके पाँच आदमी बुलाये और कहा—"सुना है, हमारे राज्यमें भ्रष्टाचार है। पर वह कहाँ है, यह पता नहीं चलता। तुम लोग उसका पता लगाओ। अगर मिल जाये तो पकड़कर हमारे पास ले आना। अगर बहुत हो तो नमूनेके लिए थोड़ा-सा ले आना।"

विशेषज्ञोंने उसी दिनसे छान-बीन शुरू कर दी।

दो महीने बाद वे फिरसे दरबारमें हाजिर हुए।

राजाने पूछा—"विशेषज्ञो, तुम्हारी जाँच पूरी हो गयी ?"

"जी, सरकार।"

"क्या तुम्हें भ्रष्टाचार मिला ?"

"जी, बहुत-सा मिला।"

राजाने हाथ बढ़ाया—"लाओ, मुझे बताओ। देखूँ, कैसा होता है।"

विशेषज्ञोंने कहा—"हुजूर, वह हाथकी पकड़में नहीं आता। वह स्थूल नहीं, सूक्ष्म है, अगोचर है। पर वह सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखा नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है।"

राजा सोचमें पड़ गये। बोले—"विशेषज्ञो, तुम कहते हो कि वह सूक्ष्म है, अगोचर है और सर्वव्यापी है। ये गुण तो ईश्वरके हैं। तो क्या भ्रष्टाचार ईश्वर है ?"

विशेषज्ञोंने कहा—"हाँ, महाराज, अब भ्रष्टाचार ईश्वर हो गया है।"

एक दरबारीने पूछा—"पर वह है कहाँ ? कैसे अनुभव होता है ?"

विशेषज्ञोंने जवाब दिया—"वह सर्वत्र है। वह इस भवनमें है। वह महाराजके सिंहासनमें है।"

"सिंहासनमें है ?"—कहकर राजा साहब उछलकर दूर खड़े हो गये।

विशेषज्ञोंने कहा—"हाँ, सरकार, सिंहासनमें है। पिछले माह इस सिंहासनपर रंग करनेके जिस बिलका भुगतान किया गया है, वह बिल

झूठा है। वह वास्तवमें दुगने दामका है। आधा पैसा बीचवाले खा गये। आपके पूरे शासनमें भ्रष्टाचार है और वह मुख्यत घूसके रूपमें है।"

विशेषज्ञोंकी बात सुनकर राजा चिन्तित हुए और दरबारियोंके कान खड़े हुए।

राजाने कहा—"यह तो बड़ी चिन्ताकी बात है। हम भ्रष्टाचार बिलकुल मिटाना चाहते हैं। विशेषज्ञो, तुम बता सकते हो कि वह कैसे मिट सकता है ?"

विशेषज्ञोंने कहा—"हाँ, महाराज, हमने उसकी भी योजना तैयार की है। भ्रष्टाचार मिटानेके लिए महाराजको व्यवस्थामें बहुत परिवर्तन करने होंगे। एक तो भ्रष्टाचारके मौके मिटाने होंगे। जैसे ठेका है तो ठेकेदार हैं। और ठेकेदार हैं तो अधिकारियोंको घूस है। ठेका मिट जाये तो उसकी घूस मिट जाये। इसी तरह और बहुत-सी चीजें हैं। किन कारणोंसे आदमी घूस लेता है, यह भी विचारणीय है।"

राजाने कहा—"अच्छा, तुम अपनी पूरी योजना रख जाओ। हम और हमारा दरबार उसपर विचार करेंगे।"

विशेषज्ञ चले गये।

राजाने और दरबारियोंने भ्रष्टाचार मिटानेकी योजनाको पढ़ा। उसपर विचार किया।

विचार करते दिन बीतने लगे और राजाका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा।

एक दिन एक दरबारीने कहा—"महाराज, चिन्ताके कारण आपका स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। उन विशेषज्ञोंने आपको झंझटमें डाल दिया।"

राजाने कहा—"हाँ, मुझे रातको नींद आती।"

दूसरा दरबारी बोला—"ऐसी रिपोर्टको आगके हवाले कर देना चाहिए जिससे महाराजकी नींदमें खलल पड़े।"

राजाने कहा—"पर करें क्या ? तुम लोगोंने भी भ्रष्टाचार मिटानेकी

योजनाका अध्ययन किया है। तुम्हारा क्या मत है? क्या उसे काममें लाना चाहिए?"

दरबारियोंने कहा—"महाराज, वह योजना क्या है, एक मुसीबत है। उसके अनुसार कितने उलट-फेर करने पड़ेंगे! कितनी परेशानी होगी! सारी व्यवस्था उलट-पलट हो जायेगी। जो चला आ रहा है, उसे बदलनेसे नयी-नयी कठिनाइयाँ पैदा हो सकती हैं। हमें तो कोई ऐसी तरकीब चाहिए जिससे बिना कुछ उलट-फेर किये भ्रष्टाचार मिट जाये।"

राजा साहब बोले—"मैं भी यही चाहता हूँ। पर यह हो कैसे? हमारे प्रपितामहको तो जादू आता था; हमें वह भी नहीं आता। तुम लोग ही कोई उपाय खोजो।"

एक दिन दरबारियोंने राजाके सामने एक साधुको पेश किया और कहा—"महाराज, एक कन्दरामें तपस्या करते हुए इन महान् साधकको हम ले आये हैं। इन्होंने सदाचारका तावीज बनाया है। वह मन्त्रोंसे सिद्ध है और उसके बाँधनेसे आदमी एकदम सदाचारी हो जाता है।"

साधुने अपने झोलेमें-से एक तावीज़ निकालकर राजाको दिया। राजाने उसे देखा। बोले—"हे साधु, इस तावीजके विषयमें मुझे विस्तारसे बताओ। इससे आदमी सदाचारी कैसे हो जाता है?"

साधुने समझाया—"महाराज, भ्रष्टाचार और सदाचार मनुष्यकी आत्मामें होता है; बाहरसे नहीं होता। विधाता जब मनुष्यको बनाता है तब किसीकी आत्मामें ईमानकी कल फ़िट कर देता है और किसीकी आत्मामें बेईमानीकी। इस कलमें-से ईमान या बेईमानीके स्वर निकलते हैं जिन्हें 'आत्माकी पुकार' कहते हैं। आत्माकी पुकारके अनुसार ही आदमी काम करता है। प्रश्न यह है कि जिनकी आत्मासे बेईमानीके स्वर निकलते हैं, उन्हें दबाकर ईमानके स्वर कैसे निकाले जायें? मैं कई वर्षोंसे इसीके चिन्तनमें लगा हूँ। अभी मैंने यह सदाचारका तावीज़ बनाया है। जिस आदमीकी भुजापर यह बँधा होगा, वह सदाचारी हो जायेगा।

मैंने कुत्तेपर भी प्रयोग किया है। यह तावीज गलेमें बाँध देनेसे कुत्ता भी रोटी नहीं चुराता। बात यह है कि इस तावीजमें-से भी सदाचारके स्वर निकलते हैं। जब किसीकी आत्मा बेईमानीके स्वर निकालने लगती है तब इस तावीजकी शक्ति आत्माका गला घोंट देती है और आदमीको तावीजके ईमानके स्वर सुनाई पड़ते हैं। वह इन स्वरोंको आत्माकी पुकार समझकर सदाचारकी ओर प्रेरित होता है। यही इस तावीजका गुण है, महाराज!"

दरबारमें हलचल मच गयी। दरबारी उठ-उठकर तावीजको देखने लगे।

राजाने खुश होकर कहा—"मुझे नहीं मालूम था कि मेरे राज्यमें ऐसे चमत्कारी साधु भी हैं। महात्मन्, हम आपके बहुत आभारी हैं। आपने हमारा संकट हर लिया। हम सर्वव्यापी भ्रष्टाचारसे बहुत परेशान थे। मगर हमें लाखों नहीं, करोड़ों तावीज चाहिए। हम राज्यकी ओरसे तावीजोंका एक कारखाना खोल देते हैं। आप उसके जनरल मैनेजर बन जायें और अपनी देख-रेखमें बढ़िया तावीज बनवायें।"

एक मन्त्रीने कहा—"महाराज, राज्य क्यों इस झंझटमें पड़े? मेरा तो निवेदन है कि साधु बाबाको ठेका दे दिया जाये। वे अपनी मण्डलीसे तावीज बनवाकर राज्यको सप्लाई कर देंगे।"

राजाको यह सुझाव पसन्द आया। साधुको तावीज बनानेका ठेका दे दिया गया। उसी समय उन्हें पाँच करोड़ रुपये कारखाना खोलनेके लिए पेशगी मिल गये।

राज्यके अखबारोंमें खबरें छपीं—'सदाचारके तावीजकी खोज!' 'तावीज बनानेका कारखाना खुला!'

लाखों तावीज बन गये। सरकारके हुक्मसे हर सरकारी कर्मचारीकी भुजापर एक-एक तावीज बाँध दिया गया।

भ्रष्टाचारकी समस्याका ऐसा सरल हल निकल आनेसे राजा और

दरबारी सब खुश थे।

एक दिन राजाको उत्सुकता जागी। सोचा—"देखें तो कि यह तावीज कैसे काम करता है!"

वह वेश बदलकर एक कार्यालय गये। उस दिन २ तारीख था। एक दिन पहले ही तनख्वाह मिली थी।

वह एक कर्मचारीके पास गये और कोई काम बताकर उसे पांच रुपयेका नोट देने लगे।

कर्मचारीने उन्हें डांटा—"भाग जाओ यहांसे! घूस लेना पाप है!"

राजा बहुत खुश हुए। तावीजने कर्मचारीको ईमानदार बना दिया था।

कुछ दिन बाद वह फिर वेश बदलकर उसी कर्मचारीके पास गये। उस दिन इकतीस तारीख थी—महीनेका आखिरी दिन।

राजाने फिर उसे पांचका नोट दिखाया और उसने लेकर जेबमें रख लिया।

राजाने उसका हाथ पकड़ लिया। बोले—"मैं तुम्हारा राजा हूं। क्या तुम आज सदाचारका तावीज बांधकर नहीं आये?"

"बांधा है, सरकार, यह देखिए!"

उसने आस्तीन चढ़ाकर तावीज दिखा दिया।

राजा असमंजसमें पड़ गये। फिर ऐसा कैसे हो गया?

उन्होंने तावीजपर कान लगाकर सुना। तावीजमें-से स्वर निकल रहे थे—"अरे, आज इकतीस है। आज तो ले ले!"

◘ ◘

एकलव्यने गुरुको अंगूठा दिखाया

सन् ४१६३ ईसवी—

शोधकर्ताओंको कुछ पुरानी पोथियोंकी पाण्डुलिपियाँ हाल ही में मिली हैं, जिनमें बीसवीं सदीके अन्तमें लिखित एक पुराण भी है। इस पुराणको सम्पादित करके हाल ही में प्रकाशित किया गया है। सम्पादकने इस पुराणकी भूमिकामें लिखा है—" "यह पुराण बीसवीं सदीके अन्तिम वर्षोंमें लिखा गया मालूम होता है। इसकी केवल एक हस्तलिखित प्रति ही प्राप्त हुई है। यद्यपि बीसवीं सदीमें मुद्रण-विद्या बहुत ही पिछड़ी हुई थी और 'रोटरी' नामकी छपाईकी एक मामूली मशीनको ही लोग इतनी बड़ी उपलब्धि मानते थे कि उसके प्रचारके लिए आधी दुनियामें 'रोटरी क्लब' खुले हुए थे फिर भी उस युगमें पुस्तकें थोड़ी-बहुत छप जाती थीं। यह महत्त्वपूर्ण पुराण तब क्यों नहीं छप सका, इसके सामाजिक, राजनीतिक कारणोंकी खोज हो रही है। इस पुराणमें उस युगके सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक जीवनपर विशद प्रकाश पड़ता है।" उक्त पुराणमें-से एक कथा यहाँ उद्धृत की जा रही है।

—लेखक

एक समयकी बात है।

... एक विश्वविद्यालयमें राजनीति विभागके एक प्रतिष्ठित अध्यापक

थे, जिनका नाम द्रोणाचार्य था। पद-क्रमके अनुसार वे 'रीडर' कहलाते थे। 'रीडर' (पढ़नेवाला) उस अध्यापकको कहते थे, जिसे कक्षामें पढ़ाना नहीं आता था और वह पाठ्यपुस्तक या कुंजी कक्षामें पढ़कर काम चला लेता था।

आचार्य द्रोणाचार्यके दो शिष्य थे। एकका नाम अर्जुनदास था और दूसरेका एकलव्यदास। अर्जुनदास एक धनी बापका बेटा था, जिसका समाजमें प्रभाव था और राजदरबारमें भी उनका मान होता था। आचार्य रोज अर्जुनदासके घर जाते थे और अर्जुनदास भी रोज उनके घर आता था। उनका साथ इतना घना था कि कोई यदि आँखें बन्द करके आचार्यप्रवरकी कल्पना करता, तो आचार्यका शरीर कल्पनामें आते-आते उसमें एक दुम निकल आती और दुमके छोरपर अर्जुनदासका चेहरा बन जाता।

एकलव्य गरीब आदमीका लड़का था, इसलिए उसे आचार्यका साक्षात्कार बहुत कम होता था। पर गुरुके प्रति उसकी भक्ति थी। उसने अपने कमरेमें द्रोणाचार्यका एक चित्र टांग रखा था और उनकी लिखी हुई एक कुंजी सिरहाने रखकर सोता था।

दोनों शिष्य एम्० ए० की परीक्षाकी तैयारी कर रहे थे (एम्० ए० एक ऐसी परीक्षा थी जिसे पढ़नेके बाद तीन वर्षका बेकारीका कोर्स पढ़ना पड़ता था।—सं०)

अर्जुन जानता था कि विद्या पढ़नेसे नहीं, बल्कि गुरु-कृपासे प्राप्त होती है। वह निरन्तर गुरुकी सेवामें रहता था। वह आचार्यके घरमें किराना, कपड़ा, सब्जी आदि पहुँचाता था। त्योहारपर आचार्यके पाँच बच्चोंको बाज़ार ले जाता और उन्हें मिठाई, कपड़े, खिलौने आदि खरीद देता। वह आचार्याको सिनेमा-नाटक दिखाता था और अन्य अध्यापकों-की पत्नियोंकी कलंक-कथाएँ गढ़कर, उन्हें सुनाकर उनका मनोरंजन करता था। वह आचार्यके कुशल-क्षेमपर ध्यान देता था। रातको उनके

सामने अन्य आचार्योंकी निन्दा करता था, जिससे उनकी आत्माका उत्थान होता था।

उधर एकलव्य गुरु-सेवासे विमुख होकर रात-दिन अध्ययनमें लगा रहता था।

एक दिन आचार्य और अर्जुनमें इस प्रकार संवाद हुआ :

"आचार्यवर, मैं आपके घरमें किराना, कपड़ा, सब्जी आदि पहुँचाता हूँ कि नहीं ?"

"हाँ वत्स, पहुँचाते हो।"

"आचार्योंको सिनेमा-नाटक कौन दिखाता है ? बच्चोंको मिठाई, खिलौने और कपड़े कौन खरीद देता है ?"

"तू ही, बेटा। तू ही यह सब करता है।"

"क्या कोई दूसरा शिष्य है, जो आपके मुँहपर आपकी प्रशंसा मुझसे अधिक करके आपके मनको प्रसन्न करता हो ?"

"नहीं, कोई नहीं।"

'क्या कोई ऐसा अध्यापक बचा है, जिसकी निन्दा न करके मैंने आपके हृदयको दुखाया हो ?

"नहीं, कोई नहीं बचा, वत्स।"

"क्या यह सत्य नहीं है कि आपके रीडर बननेमें मेरे पिताजीका बड़ा हाथ है ?"

"यह सर्वथा सत्य है।"

"आगे विभागाध्यक्ष बननेके लिए आप किसकी सहायता लेंगे ?"

"निःसन्देह तेरे पिताकी।"

"क्या एकलव्यने आपकी सेवा की है ?"

"बिलकुल नहीं। उसे तो गुरुकी कोई सुध ही नहीं है। वह तो हमेशा निर्जीव ग्रन्थोंमें ही डूबा रहता है।"

"अच्छा, यह बताइए, गुरुदेव, कि आपका सबसे प्रिय शिष्य

कौन है ?"

"तू है, वत्स ! तुझ-सा प्रिय शिष्य न कभी हुआ है और न होगा।"

सहसा अर्जुन हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—"तो गुरु-देव, मुझे वर दीजिए कि मैं ही, फ़र्स्ट क्लास फ़र्स्ट आऊँ और छात्रवृत्ति लेकर विदेश जाऊँ।"

यह सुनकर आचार्य थोड़ी देर सोचमें पड़े रहे, फिर बोले—"यह तो मैं भी चाहता हूँ, पर वह एकलव्य इसमें बाधक होगा। वह सबसे कुशाग्रबुद्धि है और परिश्रमी भी।"

अर्जुनदासने कहा—"यह मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो इतना जानता हूँ कि यदि मैं प्रथम नहीं आया, तो गुरुकी महिमा भंग हो जायेगी, आगे कोई शिष्य गुरुकी सेवा नहीं करेगा और इस अधम परम्पराको आरम्भ करनेका कलंक आपको लगेगा।"

आचार्य फिर सोचमें पड़ गये। धीरे-धीरे उनके मुखपर निश्चयकी दृढ़ता आ गयी। अर्जुन उस क्षण गुरुके उस तेजोद्दीप्त मुखको देखकर अभिभूत हो गया। लगता था, आचार्यके जीवन-भरके पुण्य आभा बन-कर मुखपर प्रकट हो गये हैं।

आचार्यने दृढ़ स्वरमें कहा—"तेरी मनोकामना पूरी होगी।"

दूसरे दिन आचार्यने एकलव्यको घर बुलाया। उससे पूछा,—"वत्स, तूने अपने कमरेमें मेरा चित्र क्यों टाँग रखा है ?"

एकलव्यने कहा—"क्योंकि आप मेरे गुरु हैं।"

"और मेरी लिखी हुई कुंजी तू सिरहाने रखकर क्यों सोता है ?"

"इसलिए कि दिनमें प्राप्त किया हुआ बिखरा ज्ञान रातमें परीक्षाके प्रश्नोत्तरोंमें सिपटकर बँध जाये।"

आचार्यने ध्यानसे देखा। फिर कहा—"यदि तू मेरा शिष्य है, तो मुझे गुरु-दक्षिणा दे।"

एकलव्यने उत्तर दिया—"मैं क्या दे सकता हूँ, गुरुवर ! न मेरी

किरानेकी दुकान है, न होजरीकी। मेरे पितासे भी ईमान बेचते नहीं बना, इसलिए निर्धन हैं।"

आचार्यने कहा—"मैं वह वस्तु माँगता हूँ, जो तेरे पास है। तू मुझे अपने दाहिने हाथका अंगूठा काटकर दे। उठा वह सुपारी काटनेका सरौता और काट दे अंगूठा।"

एकलव्य शान्त था। वह मानो इसके लिए तैयार था। उसने कहा—"गुरुवर, अंगूठा तो मैं आपको सहर्ष काटकर दे दूँ, पर यह आपके किस काम आयेगा?"

आचार्यने कहा—"सो मैं जानता हूँ। मुझे एक महान् परम्पराका निर्वाह करना है। अर्जुनकी भक्तिसे मैं प्रसन्न हूँ। मैंने उसे वर दिया है कि तू ही प्रथम आयेगा। पर वह तबतक प्रथम नहीं आ सकता, जबतक तू लिखनेमें समर्थ है। तू लिख न सके और मेरा वचन पूरा हो इसके लिए मुझे तेरा दाहिना अंगूठा चाहिए।"

एकलव्य हँसा। बोला—"मगर दाहिना अंगूठा काट देनेसे भी आपका उद्देश्य पूरा नहीं होगा। मैं बायें हाथसे भी उसी कुशलतासे लिख लेता हूँ। जब मैंने होश सँभाला और अपने नामपर ध्यान दिया, तभी मैं समझ गया कि कोई गुरु कभी मेरा अंगूठा माँगेगा। मैं तभीसे दोनों हाथोंसे लिखनेका अभ्यास कर रहा हूँ। दोनों अंगूठे कटनेसे आपका उद्देश्य पूरा हो सकता है। पर शिष्यके दोनों अंगूठे कटवानेकी परम्परा है नहीं।"

आचार्य निराश हुए। बोले—"अधम, तूने गुरुद्रोह किया। तूने दोनों हाथोंसे लिखनेका अभ्यास कर लिया। खैर, मेरे पास दूसरे रास्ते भी हैं।"

उस शामको आचार्यने अर्जुनदाससे कहा—"उसका अंगूठा मैं नहीं ले सका। पर मेरे पास एक अकाट्य दाँव भी है, जिससे वह बच नहीं सकता। तुम्हारा एक पेपर जाँचनेके लिए मुझे मिलनेवाला है और

दूसरा मेरे परम मित्र देवदत्त शर्माको। इन दोनोंमें तुम्हें १०० में-से ९९ नम्बर मिल जायेंगे और तुम एकलव्यसे आगे निकल जाओगे। उसके दोनों अंगूठे कट जायेंगे—उसकी तीव्र बुद्धि और उसका अध्ययन धरे रह जायेंगे।"

अर्जुन निश्चिन्त हो गया। उसे गुरुकी क्षमतापर विश्वास था। वे विभागमें इतने प्रभावशाली थे कि उनकी मरजीके ख़िलाफ़ पत्ता तक नहीं हिलता था।

पेपर हो गये। अर्जुनदास और एकलव्य दोनोंने यथाबुद्धि प्रश्नोंके उत्तर दिये। एकलव्यके मनमें शंका थी, पर अर्जुनदास बिलकुल निःशंक था। उसे गुरु-कृपा प्राप्त थी।

अन्तिम परचा करके शामको अर्जुन आचार्यके पास आया। आचार्य मुँह लटकाये बैठे थे।

अर्जुनका उत्साह ठण्डा पड़ गया। वह आचार्यके मुँहकी तरफ़ देखता रहा।

आचार्यने ठण्डी साँस खींचकर कहा—"मैं अधम हूँ। मैं अपना वचन पूरा नहीं कर सकूँगा। भविष्यमें कोई शिष्य गुरुकी सेवा नहीं करेगा और आगामी गुरुओंकी पीढ़ियाँ मुझे धिक्कारेंगी।"

अर्जुनने पूछा—"पर हुआ क्या, गुरुदेव ?"

आचार्य बोले—"धोखा हुआ। पेपर जाँचनेके लिए न मुझे मिला, न देवदत्तको। उपकुलपतिने अपने हाथसे किन्हीं अज्ञात व्यक्तियोंको पेपर दे दिये।"

अर्जुनने कहा—"पर ऐसा हो कैसे गया ? पेपर किसे जाना है, यह तो आपने ही तय कराया था ?"

आचार्य बोले—"पर एकलव्यने मेरी रिपोर्ट कर दी थी।"

गुरु-शिष्य दोनों सिर झुकाये बड़ी देर तक बैठे रहे। अर्जुनने कहा—"गुरुदेव, प्राचीन कालमें भी एक एकलव्य हो गया है न ?"

आचार्य बोले—"हाँ, पर उसमें और इसमें बड़ा अन्तर है। वह पुण्य-युग था, यह पाप-युग है। उस एकलव्यने बिना तर्कके अंगूठा काटकर गुरुको दे दिया था, इस एकलव्यने गुरुको अंगूठा दिखा दिया।"

■ ■

प्रेमियोंकी वापसी

नदीके किनारे बैठकर दोनोंने अन्तिम चिट्ठी लिखी—"यह दुनिया क्रूर है। प्रेमियोंको मिलने नहीं देती। हम इसे छोड़कर उस लोक जा रहे हैं, जहां प्रेमके मार्गमें कोई बाधा नहीं है।"

प्रेमेन्द्रने कहा—"यह दुनिया बहुत बुरी है न, रंजना ?"

रंजनाने समर्थन किया—"हां, बहुत दुष्ट है।"

"इसमें आग क्यों नहीं लगती, रंजना ?"

"क्योंकि आग लगानेवाले आत्महत्या कर लेते हैं।"

प्रेमी जरा देर कुछ नहीं बोल सका। फिर उसने कहा—"हम अनन्त काल तक उस लोकमें सुख भोगेंगे।"

प्रेमिका बोली—"इसका भी क्या ठीक है ? वहां मेरे चाचा-चाची पहलेसे ही हैं। तुम्हारे चाचा भी वहां पहुंच गये हैं। वे लोग क्या हमें शादी करने देंगे ?"

प्रेमीने समझाया—"वहां कोई बन्धन नहीं है। भगवान् खुद कन्या-दान करेंगे। बुजुर्गोंके बाप भी अपना कुछ नहीं बिगाड़ सकते। लो, चिट्ठीपर दस्तख़त करो।"

रंजनाने कहा—"नहीं, पहले तुम।"

प्रेमेन्द्र बोला—"नहीं पहले तुम। मैं सुसंस्कृत पुरुष हूँ। लेडीज़ फ़र्स्ट !"

रंजनाने कहा—"पर मैं नारी हूँ—पुरुषकी अनुगामिनी।"

इस बातसे सुसंस्कृत पुरुष खुश हो गया और उसने दस्तख़त कर

दिये। नीचे पुरुषकी अनुगामिनीने दस्तखत कर दिये।

पानीमें कूदते वक्त भी विवाद हुआ—

"नहीं, पहले तुम। मैं सुसंस्कृत पुरुष हूँ। लेडीज़ फर्स्ट।"

"नहीं, तुम पहले। मैं नारी हूँ—पुरुषकी अनुगामिनी।"

सुसंस्कृत पुरुषको इस बार खुशी नहीं हुई। उसने सन्देहसे पुरुषकी अनुगामिनीकी तरफ़ देखा। उसने भी पलटकर सन्देहसे सुसंस्कृत पुरुषकी तरफ़ देखा।

दोनों एक साथ साड़ीसे बंधे और कूद पड़े। जार्जेट सार्थक हुई।

रास्तेमें रंजनाने प्रेमेन्द्रसे कहा—"तुम तो मरनेके बाद भी दाँतोंसे नाखून काटते हो। बड़ी गन्दी आदत है।"

प्रेमेन्द्रने कहा—"तुम भी तो भैंसकी तरह मुँह फाड़कर जमुहाई ले रही हो। मुँहपर हाथ क्यों नहीं रखतीं? बड़ी गँवार हो!"

रंजनाने विषय बदलना उचित समझा। बोली—"उधर घरके लोग अपने लिए बहुत रो रहे होंगे।"

प्रेमेन्द्रने कहा—"तुम्हारे माँ-बाप तो खुश होंगे। सोचते होंगे, बला टली। दहेज बचा। तुम्हारी चार बहनें और बैठी हैं न।"

रंजनाने तैशमें कहा—"और तुम्हारा बाप क्या रो रहा होगा? मैं जानती हूँ, वह तुमसे कितनी नफ़रत करता है।"

अब प्रेमेन्द्रको विषय बदलना उचित मालूम हुआ। उसने कहा—"छोड़ो इन बातोंको। इधर घर बसानेकी सोचो।"

रंजनाने कहा—"बड़ी ग़लती हो गयी। मैंने कॉलेजमें हमेशा पाक-शास्त्रका पीरियड गोल किया। सीख लेती, तो तुम्हें बढ़िया पकवान बनाकर खिलाती।"

फिर उसे कुछ याद आया, बोली—"पर कोई बात नहीं। हमारी पाक-शास्त्रकी प्रोफ़ेसर—मिस सूद—पिछले महीने ही वहाँ पहुँची हैं। तुम उन्हें जानते हो न? पाक-शास्त्र बहुत अच्छा पढ़ाती हैं, पर खाना

बहुत ख़राब बनाती हैं। उन्हें प्रिन्सिपल साहिबाके भाईसे गर्भ रह गया था। उन्होंने जहर खा लिया। बेचारीने कैरेक्टर रोल अच्छा लिखवानेके लिए वैसा किया था।"

वे उस लोक पहुँच चुके थे। शामको पार्कमें घूम रहे थे कि एक बेंच-पर पहचाने-से स्त्री-पुरुष बैठे दिखे। पुरुष नारीका हाथ पकड़े था और नारी पुरुषके कन्धेपर सिर रखे थी।

प्रेमेन्द्रने ठिठककर कहा—"अरे, ये तो मेरे स्कूलके हेडमास्टर सक्सेना साहब हैं!"

रंजनाने कहा—"और वह मेरी हेड मास्टरनी मिसेज़ शर्मा हैं!"

प्रेमेन्द्रने कहा—"सक्सेना साहब तो बड़े सख्त और अनुशासनप्रिय आदमी थे। हमने उन्हें कभी मुसकराते भी नहीं देखा। हम लोगोंको आश्चर्य होता था कि जो आदमी मुसकरा नहीं सकता, उसके बच्चे कैसे होते जाते हैं।"

वे मुड़ने लगे। तभी हेडमास्टरने पुकारा—"शरमाओ मत, बच्चो! इधर आओ।"

वे उनके पास चले गये। मिसेज़ शर्माने अपनी विद्यार्थिनीको पहचान लिया। थोड़ी देर औपचारिक बातचीत होती रही। फिर वे अपने-अपने विद्यार्थीसे पार्कमें घूमते हुए बातें करने लगे।

हेडमास्टरने कहा—"प्रेमेन, तुम परेशान हो रहे हो कि मुझ-जैसा कठोर संयमी और सदाचारी आदमी मिसेज शर्मासे प्रेम कैसे करने लगा। बात ऐसी हुई कि दो साल पहले एजूकेशन बोर्डके दफ़्तरमें हम दोनों मैट्रिककी परीक्षाके नम्बरोंका टोटल कर रहे थे। तभी हमारा भी टोटल हो गया। तीन महीने पहले मिसेज़ शर्माकी निमोनियासे मौत हो गयी। और एक हफ़्ता पहले मैं भी हार्टफ़ेलसे यहाँ आ गया। मैंने इससे कह दिया है कि मैंने तुम्हारे विरहमें आत्म-हत्या कर ली। तुम उसे बता मत

देना कि मैं हार्टफ़ेल होनेसे मरा।

उधर मिसेज़ शर्माने रंजनासे कहा—"मैं तो इस हेडमास्टरका घमण्ड तोड़ना चाहती थी। यह बड़ा कठोर और सदाचारी बनता था। राष्ट्रपतिसे तमग़ा ले आया था। पर जब मैंने इसे तोड़ा, तो तमगा बेचकर मेरे चक्कर लगाने लगा। झूठ बोलना इसने यहाँ भी नहीं छोड़ा। मरा हार्टफ़ेल होनेसे और कहता है कि मैंने तुम्हारे लिए आत्महत्या कर ली। देख, तुझे जो करना हो, जल्दी कर लेना। पुरुषका कोई भरोसा नहीं। यह हेडमास्टर चोरी-चोरी अपनी सालीको तलाश करता रहता है।"

उधर हेडमास्टरने प्रेमेन्द्रसे कहा—"इस लड़कीका कोई पूर्व प्रेमी तो यहाँ नहीं है? ज़रा सावधान रहना। कुछ भरोसा नहीं। यह हेडमास्टरनी चुपके-चुपके अपने स्कूलके संगीत मास्टरका पता लगाती रहती है।

वे अपने गुरुओंसे दीक्षा लेकर आगे बढ़े, तो देखा, प्रेमेन्द्रके चाचा अपने साहबकी बीबीके हाथमें हाथ डाले घूम रहे हैं। उसे झटका लगा। चाचाके बारेमें वह ऐसी कल्पना नहीं कर सकता था। चाचाने उसे देख लिया। बोले—"शरमाओ मत। यहाँ हम सब मुक्त हैं। मेम साहबसे हमारा उधरसे ही चल रहा था।"

प्रेमेन्द्रने कहा—"मगर चाचा, आप तो कहा करते थे, मेम साहब बड़ी फ्लर्ट (कुलटा) औरत है।"

चाचाने कहा—"सो तो हम उसकी तारीफ़में कहते थे। अरे, पतिव्रता होतीं, तो हमारे किस काम आती? फ़्लर्ट है, तभी तो हमें फायदा पहुँचाती रही है।

अब प्रेमेन्द्रको विश्वास हो गया कि जिनसे डरते थे, वे सब नियम-बन्धन यहाँ नहीं हैं।

वह रंजनासे शादी करनेके लिए कहता और वह टालती जाती।

एक दिन उसने कहा—"मैं सब जान गया हूँ। तुम छिपकर उस विनोदसे मिलती हो। वह, जो कार-दुर्घटनामें मर गया था। वह हेड-

मास्टरनी तुम्हें उससे मिलवाती है। तुम भूल गयीं कि यह वही विनोद है, जिसके बापने तुम्हारे बाबूजीको सस्पेण्ड करवाया था।"

रंजनाने कहा—"तुम्हें भ्रम है। मैं उससे नहीं मिलती।"

"तुम उससे कहीं प्रेम मत करने लगना।"

"मैं भला उस बदमाशसे प्रेम करूँगी ?"

"तुम उसे प्रेम करने ही लगी हो। मुझे विश्वास हो गया।"

"आखिर क्यों तुम ऐसा सोचते हो ? कैसे कहते हो कि मैं उससे प्रेम करती हूँ ?"

"इसलिए कि तुमने उसे अभी 'बदमाश' कहा। प्रेम न करतीं, तो उसे बदमाश नहीं कहतीं।"

रंजनाने छिपाना जरूरी नहीं समझा। उसे बतला दिया कि मैं विनोदसे विवाह करनेवाली हूँ।

प्रेमेन्द्रने रोना चाहा, पर उस शोकमें आँसू नहीं निकलते। उसने उसे भला-बुरा कहा और आत्महत्याकी धमकी देकर चला गया।

पर आत्महत्या वह कर नहीं सका। उसने फाँसी लगानेकी कोशिश की, गरदन कसी ही नहीं। रेलके नीचे लेट गया, पर पूरी गाड़ी निकल गयी और उसे चोट तक नहीं आयी। वह नदीमें कूदा, पर उतराता रहा। एक दिन वह इमारतकी पाँचवीं मंजिलसे कूद पड़ा। नीचे सड़कपर एक पुलिसवालेके ऊपर गिरा। पुलिसवालेने हँसकर कहा—"क्या बच्चोंका खेल खेलते हो !"

प्रेमेन्द्रने कहा—"मैं पाँचवीं मंजिलसे कूदा हूँ और तुम इसे बच्चोंका खेल कहते हो !"

उसने जवाब दिया—"तो क्या हुआ ? तुम यहाँ सौवीं मंजिलसे भी कूद सकते हो। पर तुम आखिर कूदे क्यों ?"

प्रेमेन्द्रने कहा—"मैं आत्म-हत्या करना चाहता हूँ।"

पुलिसवालेने कहा—"पर आत्महत्या तो यहाँ हो नहीं सकती। हो

जाये, तो जीव यहाँसे कहाँ जाये ? तुम्हारे उधरके कवि तक यह जानते हैं। किसीने कहा है न—"मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे !"

प्रेमेन्द्रने कहा—"तो हत्या तो हो सकती होगी। मैं उस हेड-मास्टरजीकी हत्या करना चाहता हूँ।"

पुलिसमैनने कहा—"तुम्हारे पुराने संस्कार छूटे नहीं हैं, तभी तो हत्याके लिए पुलिससे सलाह माँगते हो। देखो, हत्या भी नहीं हो सकती। यही समस्या है कि जीव कहाँ जाय। बात क्या है ? कुछ प्रेम वगैरहका मामला है क्या ?"

प्रेमेन्द्रने कहा—"हाँ, वह मुझे धोखा दे गयी।"

पुलिसमैनने कहा—"तो तुम प्रेम और विवाह विभागके संचालकसे मिलो। वे मामला सुलझायेंगे।"

प्रेमेन्द्र संचालकके दफ्तरमें गया। उन्होंने उसे सिरसे पाँव तक देखा और खूब मुसकान लाकर पूछा—"यस यंग मैन, व्हाट कनाई डू फ़ॉर यू ?" (मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ ?)

प्रेमेन्द्रने कहा—"साहब भारतसे आये मालूम होते हैं।"

साहबने पूछा—"तुमने कैसे जाना ?"

प्रेमेन्द्रने कहा—"ऐसे कि आप यहाँ भी अँगरेजीमें बोल रहे हैं। यह ऊँचे दरजेके भारतीयका लक्षण है।"

साहबने कहा—"तुम ठीक कहते हो। अँगरेजीके लिए ही मैंने वह गिरा हुआ देश छोड़ दिया। मैं आई० सी० एस्० था। दिल्लीमें एक विभागका सेक्रेटरी था। २६ जनवरी १९६५ को जब हिन्दी उस देशकी शासनकी भाषा हो गयी, तो २७ को मैं हवाई जहाजसे लन्दन पहुँचा और टेम्स नदीमें कूद पड़ा।"

प्रेमेन्द्रने कहा—"सर, आप इतनी दूर क्यों गये ? वहीं दिल्लीमें यमुनामें कूदकर मर सकते थे।"

साहबने कहा—"नॉनसेन्स ! कैसी बात करते हो ! जमनामें कूदता,

तो 'हर मेजस्टी' (इंग्लैण्डकी रानी) मेरे बारेमें क्या सोचतीं ?"

प्रेमेन्द्रने उन्हें अपनी समस्या बतायी। संचालकने कहा—"यह पॉलिसीका मामला है। ऊपरसे तय होगा। पॉलिसी तय करा लो, तो अमलमें मैं जैसा कहोगे, वैसा उसे घुमा दूँगा। ठीक उस पॉलिसीसे उलटा उसी पॉलिसीके अन्तर्गत कर सकता हूँ। मुझे दिल्लीमें इसका अभ्यास हो चुका है। मैं तुम्हारा केस विधाताके पास भेज देता हूँ। तुम उनसे कल मिल लो।"

दूसरे दिन प्रेमेन्द्र विधाताके सामने हाजिर हुआ। रंजना भी बुला ली गयी थी।

विधाताने कहा—"तुम्हारा मामला हमने देख लिया। तुम क्या चाहते हो ?"

प्रेमेन्द्रने कहा—"अगर आप इसे सीरियसली लें, तो मैं आपको 'प्रभु' कहूँ—प्रभु, आप रंजनाको मुझसे प्रेम करनेका हुक्म दें और उस बदजात हेडमास्टरनीको डिसमिस कर दें।"

विधाताने कहा—"जहाँतक प्रेमका सम्बन्ध है, हमारे हाथ संविधानसे बँधे हैं। प्रेम पब्लिक सेक्टरमें नहीं है, प्राइवेट सेक्टरमें है। वह हेडमास्टरनी भी हमारी नौकरीमें नहीं है। हम दूसरा पक्ष सुनकर समझौता करानेका प्रयत्न कर सकते हैं। देवी रंजना, तुम्हें इस सम्बन्धमें क्या कहना है ?"

रंजनाने निवेदन किया—"प्रभु, हमारी दुनियामें हमें स्वतन्त्रता नहीं है, इसलिए जो हमारे सम्पर्कमें आ जाता है, उसीसे हमें प्रेम करना पड़ता है। यह प्रेमेन्द्र हमारे घरमें बचपनसे आता रहा है। पिताजी इससे पान-सिगरेट मंगवाते थे। मेरे माता-पिता इतने सख्त हैं कि न मुझे अकेली कहीं जाने देते थे, न किसी आदमीको घरमें आने देते थे। मैं प्रेमेन्द्रके सिवा किसी दूसरे पुरुषको जानती भी नहीं थी। इसी मजबूरीमें जो हमारा सम्बन्ध हुआ, उसे हम प्रेम कहने लगे। मेरा वश चलता, तो मैं

विनोदसे प्रेम करती। मुझे वह पसन्द था। पर उसके पिताने हमारे बाबूजीको सस्पेण्ड करवा दिया था। इसलिए उसका हमारे यहाँ आना नहीं होता था। पर यहाँ स्वतन्त्रता है। मैं अपनी इच्छासे प्रेम कर सकती हूँ। इसलिए विनोदसे प्रेम करती हूँ। परतन्त्रतामें जो हो गया, वह स्वतन्त्रतामें नियामक नहीं हो सकता।"

विधाताने प्रेमेन्द्रसे कहा—"सुना तुमने? तुम क्या कहते हो?"

प्रेमेन्द्रने दुःखी प्रेमीके आधिकारिक रोषसे कहा—"यही कहना है कि हमें ऐसी जगह नहीं रहना। हमें वापस हमारे संसारमें भेज दिया जाये। *ईश्वरका भरोसा झूठा निकला।*"

विधाताने कहा—"तुम वहाँसे यहाँ और यहाँसे वहाँ भागते फिरोगे, या कुछ करोगे भी?"

तबतक सचिवने रेकॉर्ड देखकर बताया—"प्रभु, इस लड़कीकी माताका कोटा खत्म हो गया। पाँच लड़कियाँ देनी थी, सो दे चुके। अब यह उसी परिवारमें जन्म नहीं ले सकती। लड़केके बापका अलबत्ता एक बेटा बकाया है।"

प्रेमेन्द्रने गुस्सेसे कहा—"अजीब धाँधली है! यहाँ भी अपना बाप हम नहीं चुन सकते! एक लड़की किसीको दे देनेमें क्या लड़कियोंका स्टाक यहाँ खत्म हो जायेगा?"

विधाताने उसे नाराज़ीसे देखा। बोले—"तुम्हें गुस्सा जल्दी आ जाता है, प्रेमी महोदय! तुम इतनी जल्दी दुनिया क्यों छोड़ आये? किसी दुर्घटनामें मारे गये थे क्या?"

प्रेमेन्द्रने कहा—"मैं प्रेमके कारण आत्महत्या करके आया हूँ। हम दोनों एक साथ नदीमें कूद पड़े। वहाँ दुनियावाले हमारी शादी नहीं होने दे रहे थे।"

विधाताने कहा—"मगर तुम बातें ऐसे तैशमें करते हो, जैसे किसी आन्दोलनमें शहीद होकर आये हो! दुनियामें कोई और काम करनेको

नहीं बने थे जो यहां चले आये ?"

वे दोनों एक-दूसरेकी तरफ़ देखने लगे ।

विधाताने रंजनासे कहा—"देवीजी, आपका नया प्रेमी जब सुनेगा कि आप उनके प्रेममें आत्महत्या करके आयी हैं, तो वह भी आपको छोड़ देगा । वहां सुन्दरियोंकी कमी नहीं है ।"

रंजनाने कहा—"साहब, यह जगह हमें बिल्कुल पसन्द नहीं आयी । यहां कुछ निश्चित नहीं है । इतनी स्वतन्त्रता बरदाश्त नहीं हो सकती । कोई किसीके प्रति सच्चा नहीं होता । आप तो हम लोगोंको वापस हमारी दुनियामें भेज दीजिए । कहीं भी भेज दीजिए ।"

विधाताने कहा—"पर अब एक कठिनाई है । जो प्रेममें आत्महत्या करके आते हैं, उन्हें फिर मनुष्य बनानेका नियम नहीं है । जिस कारणसे उन्हें जीना चाहिए, उस कारणसे वे मर जाते हैं । उनमें मनुष्यके रूपमें प्रेम करनेके योग्य साहस और विवेककी कमी होती है । तुम्हारे लिए भी यह अच्छा नहीं है कि तुम फिर मनुष्य बनो । एक बार बनकर और प्रेम करके तुमने देख लिया । तुमसे बना नहीं । तुममें हिम्मत ही नहीं है प्रेमको निबाहनेकी । तुम दुबारा इस झंझटमें मत पड़ो । कोई और जीवधारी बनो, जो मनुष्यकी तरह प्रेम करनेको बाध्य नहीं है । बोलो, कौन जानवर बनना चाहते हो ।"

प्रेमेन्द्रने रंजनासे कहा—"बता, क्या बनेगी !"

उसने प्रेमेन्द्रसे कहा—"तुम्हीं बताओ पहले ।"

प्रेमेन्द्रने कहा—"नहीं, पहले तुम । मैं सुसंस्कृत आदमी हूं । लेडीज फ़र्स्ट !"

रंजनाने कहा—"नहीं, तुम पहले बताओ । मैं स्त्री हूं, पुरुषकी अनुगामिनी !"

■ ■

उखड़े खम्भे

एक दिन राजाने खीझकर घोषणा कर दी कि मुनाफाखोरोंको बिजलीके खम्भेमें लटका दिया जायेगा।[1]

सुबह होते ही लोग बिजलीके खम्भोंके पास जमा हो गये। उन्होंने खम्भोंकी पूजा की, आरती उतारी और उन्हें तिलक किया।

शाम तक वे इन्तजार करते रहे कि अब मुनाफ़ाखोर टाँगे जायेंगे—और अब। पर कोई नहीं टाँगा गया।

लोग जुलूस बनाकर राजाके पास गये और कहा—"महाराज, आपने तो कहा था कि मुनाफाखोर बिजलीके खम्भेमें लटकाये जायेंगे, पर खम्भे तो वैसे ही खड़े हैं और मुनाफ़ाखोर स्वस्थ और सानन्द हैं।"

राजाने कहा—"कहा है तो उन्हें खम्भोंमें टाँगा ही जायेगा। थोड़ा समय लगेगा। टाँगनेके लिए फन्दे चाहिए। मैंने फन्दे बनानेका आर्डर दे दिया है। उनके मिलते ही, सब मुनाफाखोरोंको बिजलीके खम्भोंसे टाँग दूँगा।"

भीड़मेंसे एक आदमी बोल उठा—"पर फन्दे बनानेका ठेका भी तो एक मुनाफाखोरने ही ले लिया है।"

राजाने कहा—"तो क्या हुआ? उसे उसके ही फन्देसे टाँगा जायेगा।"

तभी दूसरा बोला—"पर वह तो कह रहा था कि फाँसी लटकानेका

---

१. सन्दर्भ : भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्वर्गीय पण्डित नेहरूकी मशहूर घोषणा।

20369

ठेका भी मैं ही ले लूँगा।"

राजाने जवाब दिया—"नहीं, ऐसा नहीं होगा। फांसी देना निजी क्षेत्रका उद्योग अभी नहीं हुआ है।"

लोगोंने पूछा—"तो कितने दिन बाद वे लटकाये जायेंगे?"

राजाने कहा—"आजसे ठीक सोलहवें दिन वे तुम्हें विजलीके खम्भोंसे लटके दिखेंगे।"

लोग दिन गिनने लगे।

सोलहवें दिन सुबह उठकर लोगोंने देखा कि विजलीके सारे खम्भे उखड़े पड़े हैं। वे हैरान, कि रातको न आंधी आयी न भूकम्प आया, फिर ये खम्भे कैसे उखड़ गये!

उन्हें एक खम्भेके पास एक मज़दूर खड़ा मिला। उसने वतलाया कि मजदूरोंसे रातको ये खम्भे उखड़वाये गये हैं। लोग उसे पकड़कर राजाके पास ले गये।

उन्होंने शिकायत की—"महाराज, आप आज मुनाफ़ाखोरोंको विजलीके खम्भोंसे लटकानेवाले थे, पर रातमें सब खम्भे उखाड़ दिये गये। हम इस मजदूरको पकड़ लाये हैं। यह कहता है कि रातको सब खम्भे उखड़वाये गये हैं।"

राजाने मज़दूरसे पूछा—"क्यों रे, किसके हुक्मसे तुम लोगोंने खम्भे उखाड़े?"

उसने कहा—"सरकार, ओवरसियर साहबने हुक्म दिया था।"

तब ओवरसियर बुलाया गया।

उससे राजाने कहा—"क्योंजी, तुम्हें मालूम है, मैंने आज मुनाफ़ाखोरोंको विजलीके खम्भोंसे लटकानेकी घोषणा की थी?"

उसने कहा—"जी सरकार!"

"फिर तुमने रातों-रात खम्भे क्यों उखड़वा दिये?"

"सरकार, इंजीनियर साहबने कल शामको हुक्म दिया था कि रातमें

खम्भे उखाड़ दिये जायें।"

अब इंजीनियर बुलाया गया। उसने कहा कि "उसे बिजली इंजीनियरने आदेश दिया था कि रातमें सारे खम्भे उखाड़ देना चाहिए।"

बिजली इंजीनियरसे कैफ़ियत तलब की गयी, तो उसने हाथ जोड़कर कहा कि, "सेक्रेटरी साहबका हुक्म मिला था।"

विभागीय सेक्रेटरीसे राजाने पूछा—"खम्भे उखाड़नेका हुक्म तुमने दिया था?"

सेक्रेटरीने स्वीकार किया—"जी सरकार!"

राजाने कहा—"यह जानते हुए भी कि आज मैं इन खम्भोंका उपयोग मुनाफ़ाखोरोंको लटकानेके लिए करनेवाला हूँ, तुमने ऐसा दुस्साहस क्यों किया?"

सेक्रेटरीने कहा—"साहब, पूरे शहरकी सुरक्षाका सवाल था। अगर रातको खम्भे न हटा लिये जाते, तो आज सारा शहर नष्ट हो जाता?"

राजाने पूछा—"यह तुमने कैसे जाना? किसने बताया तुम्हें?"

सेक्रेटरीने कहा—"मुझे विशेषज्ञने सलाह दी थी कि यदि शहरको बचाना चाहते हो तो सुबह होनेके पहले खम्भोंको उखड़वा दो।"

राजाने पूछा—"कौन है वह विशेषज्ञ? भरोसेका आदमी है?"

सेक्रेटरीने कहा—"बिलकुल भरोसेका आदमी है सरकार! घरका ही आदमी है। मेरा साला होता है। मैं उसे हुज़ूरके सामने पेश करता हूँ।"

विशेषज्ञने निवेदन किया—"सरकार, मैं विशेषज्ञ हूँ और भूमि तथा वातावरणकी हलचलका अध्ययन करता हूँ। मैंने परीक्षणके द्वारा पता लगाया कि ज़मीनके नीचे एक भयंकर विद्युत्-प्रवाह घूम रहा है। मुझे यह भी मालूम हुआ कि आज वह बिजली हमारे शहरके नीचेसे निकलेगी। आपको मालूम नहीं हो रहा है, पर मैं जानता हूँ कि इस वक़्त हमारे नीचेसे भयंकर बिजली प्रवाहित हो रही है। यदि हमारे बिजली-

के खम्भे ज़मीनमें गड़े रहते तो यह बिजली खम्भोंके द्वारा ऊपर आती और उसकी टक्कर अपने पावरहाउसकी बिजलीसे होती। तब भयंकर विस्फोट होता। शहरपर हजारों बिजलियाँ एक साथ गिरतीं। तब न एक प्राणी जीवित बचता, न एक इमारत खड़ी रहती। मैंने तुरन्त सेक्रेटरी साहबको यह बात बतायी और उन्होंने ठीक समझकर उचित क़दम उठाकर शहरको बचा लिया।"

लोग बड़ी देर तक सकतेमें खड़े रहे। वे मुनाफ़ाखोरोंको बिलकुल भूल गये। वे सब उस संकटसे अभिभूत थे, जिसकी कल्पना उन्हें दी गयी थी। जान बच जानेकी अनुभूतिसे वे दबे हुए थे। चुपचाप लौट गये।

उसी सप्ताह बैंकमें इन नामोंसे ये रक़में जमा हुईं—

सेक्रेटरीकी पत्नीके नामपर—२ लाख रुपये

श्रीमती बिजली इंजीनियर—१ लाख

श्रीमती इंजीनियर—१ लाख

श्रीमती विशेषज्ञ—२५ हजार

श्रीमती ओवरसियर—५ हजार

उसी सप्ताह 'मुनाफ़ाखोर संघ'के हिसाबमें नीचे लिखी रक़में 'धर्मादा' खातेमें डाली गयीं—

कोढ़ियोंकी सहायताके लिए दान—२ लाख रुपये

विधवाश्रमको—१ लाख

क्षय रोगके अस्पतालको—१ लाख

पागलखानेको—२५ हजार

अनाथालयको—५ हजार

■ ■

भगतकी गत

उस दिन जब भगतजीकी मौत हुई थी, तब हमने कहा था—भगतजी स्वर्गवासी हो गये।

पर अभी मुझे मालूम हुआ कि भगतजी, स्वर्गवासी नहीं नरकवासी हुए हैं। मैं कहूँ, तो किसीको इसपर भरोसा नहीं होगा, पर यह सही है कि उन्हें नरकमें डाल दिया गया है और उनपर ऐसे जघन्य पापोंके आरोप लगाये गये हैं कि निकट भविष्यमें उनके नरकसे छूटनेकी कोई आशा नहीं है। अब हम उनकी आत्माकी शान्तिकी प्रार्थना करें, तो भी कुछ नहीं होगा। बड़ीसे बड़ी शोक-सभा भी उन्हें नरकसे नहीं निकाल सकती।

सारा मुहल्ला अभी भी याद करता है कि भगतजी मन्दिरमें आधी रात तक भजन करते थे। हर दो-तीन दिनोंमें वे किसी समर्थ श्रद्धालुसे मन्दिरमें लाउड स्पीकर लगवा देते और उसपर अपनी मण्डली समेत भजन करते। पर्वपर तो चौबीसों घण्टे लाउड स्पीकरपर अखण्ड कीर्तन होता। एक-दो बार मुहल्लेवालोंने इस अखण्ड कोलाहलका विरोध किया तो भगतजीने भक्तोंकी भीड़ जमा कर ली और दंगा करानेपर उतारू हो गये। वे भगवान्‌के लाउड स्पीकरपर प्राण देने और प्राण लेनेपर तुल गये थे।

ऐसे ईश्वरभक्त जिन्होंने अरबों बार भगवान्‌का नाम लिया, नरकमें भेजे गये और अजामिल जिसने एक बार भूलसे भगवान्‌का नाम ले लिया था, अभी भी स्वर्गके मजे लूट रहा है। अन्धेर कहाँ नहीं है!

भगतजी बड़े विश्वाससे उस लोकमें पहुँचे। बड़ी देर तक यहाँ-वहाँ

घूमकर देखते रहे। फिर एक फाटकपर पहुँचकर चौकीदारसे पूछा—"स्वर्गका प्रवेश-द्वार यही है न ?"

चौकीदारने कहा—"हाँ यही है।"

वे आगे बढ़ने लगे, तो चौकीदारने रोका—"प्रवेश-पत्र यानी टिकिट दिखाइए पहले।"

भगतजीको क्रोध आ गया। बोले—"मुझे भी टिकिट लगेगा यहाँ ? मैंने कभी टिकिट नहीं लिया। सिनेमा मैं बिना टिकिट देखता था और रेलमें भी बिना टिकिट बैठता था। कोई मुझसे टिकिट नहीं माँगता। अब यहाँ स्वर्गमें टिकिट माँगते हो ? मुझे जानते हो। मैं 'भगतजी' हूँ।"

चौकीदारने शान्तिसे कहा—"होंगे। पर मैं बिना टिकिटके नहीं जाने दूँगा। आप पहले उस दफ़्तरमें जाइए। वहाँ आपके पाप-पुण्यका हिसाब होगा और तब आपको टिकिट मिलेगा।"

भगतजी उसे ठेलकर आगे बढ़ने लगे। तभी चौकीदार एकदम पहाड़ सरीखा हो गया और उसने उन्हें उठाकर दफ़्तरकी सीढ़ीपर खड़ा कर दिया।

भगतजी दफ़्तरमें पहुँचे। वहाँ कोई बड़ा देवता फ़ाइलें लिये बैठा था। भगतजीने हाथ जोड़कर कहा—"अहा, मैं पहचान गया। भगवान् कार्तिकेय विराजे हैं।"

फ़ाइलसे सिर उठाकर उसने कहा—"मैं कार्तिकेय नहीं हूँ। झूठी चापलूसी मत करो। जीवन-भर वहाँ तो कुकर्म करते रहे हो, और यहाँ आकर 'हें हें' करते हो। नाम बताओ।"

भगतजीने नाम बताया, धाम बताया।

उस अधिकारीने कहा—"तुम्हारा मामला बड़ा पेचीदा है। हम अभीतक तय नहीं कर पाये कि तुम्हें स्वर्ग दें या नरक। तुम्हारा फ़ैसला खुद भगवान् करेंगे।"

भगतजीने कहा—"मेरा मामला तो बिलकुल सीधा है। मैं सोलह

बड़े धार्मिक आदमी हैं। नियमसे रोज भगवान्का भजन करता रहा हूं। कभी झूठ नहीं बोला और कभी चोरी नहीं की। मन्दिरमें इतनी स्त्रियाँ आती थीं, पर मैं सबको माता समझता था। मैंने कभी कोई पाप नहीं किया। मुझे तो आँख मूँदकर आप स्वर्ग भेज सकते हैं।"

अधिकारीने कहा—"भगतजी, आपका मामला उतना सीधा नहीं है, जितना आप समझ रहे हैं। परमात्मा खुद उसमें दिलचस्पी ले रहे हैं। आपको मैं उनके सामने हाजिर किये देता हूँ।"

एक चपरासी भगतजीको भगवान्के दरबारमें ले चला। भगतजीने रास्तेसे ही स्तुति शुरू कर दी। जब वे भगवान्के सामने पहुँचे तो बड़े जोरसे भजन गाने लगे—

"हम भगतनके भगत हमारे,
सुन अर्जुन परनिज्ञा मेरी, यह व्रत टरै न टारे।"

भजन पूरा करके गद्गद वाणीमें बोले—"अहा, जन्म-जन्मान्तरकी मनोकामना आज पूरी हुई। प्रभु, अपूर्व रूप है, आपका। जितनी फोटो आपकी संसारमें चल रही है, उनमें-से किसीसे नहीं मिलता।"

भगवान् स्तुतिसे 'बोर' हो रहे थे। रुखाईसे बोले—"अच्छा, अच्छा, ठीक है। अब क्या चाहते हो, सो बोलो।"

भगतजीने निवेदन किया—"भगवन्, आपसे क्या छिपा है? आप तो सबकी मनोकामना जानते हैं। कहा है–राम झरोखा बैठके सबका मुजरा लेय, जाकी जैसी चाकरी ताको तैसा देय! मुझे प्रभु, स्वर्गमें कोई अच्छी-सी जगह दिला दीजिए।"

प्रभुने कहा—"तुमने ऐसा क्या किया है, जो तुम्हें स्वर्ग मिले!"

भगतजीको इस प्रश्नसे चोट लगी। जिसके लिए इतना किया, वही पूछता है कि तुमने ऐसा क्या किया! भगवान्पर क्रोध करनेसे क्या फ़ायदा—यह सोचकर भगतजी गुस्सा पी गये। दीनभावसे बोले—"मैं

रोज आपका भजन करता रहा।"

भगवान्‌ने पूछा—"लेकिन लाउड स्पीकर क्यों लगाते थे?"

भगतजी सहज भावसे बोले—"उधर सभी लाउड स्पीकर लगाते हैं। सिनेमावाले, मिठाईवाले, काजल बेचनेवाले सभी उसका उपयोग करते हैं, तो मैंने भी कर लिया।"

भगवान्‌ने कहा—"वे तो अपनी चीजका विज्ञापन करते हैं। तुम क्या मेरा विज्ञापन करते थे? मैं क्या कोई बिकाऊ माल हूँ?"

भगतजी सन्न रह गये। सोचा, भगवान् होकर कैसी बातें करते हैं।

भगवान्‌ने पूछा—"मुझे तुम अन्तर्यामी मानते हो न?"

भगतजी बोले—"जी हाँ!"

भगवान्‌ने कहा—"फिर अन्तर्यामीको सुनानेके लिए लाउड स्पीकर क्यों लगाते थे? मैं क्या बहरा हूँ? यहाँ सब देवता मेरी हँसी उड़ाते हैं। मेरी पत्नी तक मजाक करती है कि यह भगत तुम्हें बहरा समझता है।"

भगतजी जवाब नहीं दे सके।

भगवान्‌को और गुस्सा आया। वे कहने लगे—"तुमने कई साल तक सारे मुहल्लेके लोगोंको तंग किया। तुम्हारे कोलाहलके मारे वे न काम कर सकते थे, न चैनसे बैठ सकते थे और न सो सकते थे। उनमें-से आधे तो मुझसे घृणा करने लगे हैं। सोचते हैं, अगर भगवान् न होता तो यह भगत इतना हल्ला न मचाता। तुमने मुझे कितना बदनाम किया है!"

भगतने साहस बटोरकर कहा—"भगवन्, आपका नाम लोगोंके कानोंमें जाता था, यह तो उनके लिए अच्छा ही था। उन्हें अनायास पुण्य मिल जाता था।"

भगवान्‌को भगतकी मूर्खतापर तरस आया। बोले—"पता नहीं यह परम्परा कैसे चली कि भक्तका मूर्ख होना जरूरी है। और किसने तुमसे कहा कि मैं चापलूसी पसन्द करता हूँ? तुम क्या यह समझते हो कि तुम मेरी स्तुति करोगे तो मैं किसी बेवक़ूफ़ अफ़सरकी तरह खुश हो जाऊँगा?

मैं इतना बेवकूफ नहीं हूँ भगतजी कि तुम-जैसे मूर्ख मुझे चला लें। मैं चापलूसीसे खुश नहीं होता, कर्म देखता हूँ।"

भगतजीने कहा—"भगवन्, मैंने कभी कोई कुकर्म नहीं किया।"

भगवान् हँसे। कहने लगे—"भगत, तुमने आदमियोंकी हत्या की है। उधरकी अदालतसे बच गये, पर यहाँ नहीं बच सकते।"

भगतजीका धीरज अब छूट गया। वे अपने भगवान्की नीयतके बारेमें शंकालु हो उठे। सोचने लगे, यह भगवान् होकर झूठ बोलता है। जरा तैशमें कहा—"आपको झूठ बोलना शोभा नहीं देता। मैंने किसी आदमीकी जान नहीं ली। अभीतक मैं सहता गया, पर इस झूठे आरोपको मैं सहन नहीं कर सकता। आप सिद्ध करिए कि मैंने हत्या की।"

भगवान्ने कहा—"मैं फिर कहता हूँ कि तुम हत्यारे हो। अभी प्रमाण देता हूँ।"

भगवान्ने एक अधेड़ उम्रके आदमीको बुलाया। भगतसे पूछा—"इसे पहचानते हो?"

"हाँ, यह मेरे मुहल्लेका रमानाथ मास्टर है। पिछले साल बीमारीसे मरा था।" भगतने विश्वाससे कहा।

भगवान् बोले—"बीमारीसे नहीं, तुम्हारे भजनसे मरा है। तुम्हारे लाउड स्पीकरसे मरा है। रमानाथ तुम्हारी मृत्यु क्यों हुई?"

रमानाथने कहा—"प्रभु, मैं बीमार था। डॉक्टरोंने कहा कि तुम्हें पूरी तरह नींद और आराम मिलना चाहिए। पर भगतजीके लाउड स्पीकरपर अखण्ड कीर्तनके मारे न मैं सो सका, न आराम कर सका। दूसरे दिन मेरी हालत बिगड़ गयी और चौथे दिन मैं मर गया।"

भगत सुनकर घबरा उठे।

तभी एक बीस-इक्कीस सालका लड़का बुलाया गया। उससे पूछा—"सुरेन्द्र, तुम कैसे मरे?"

"मैंने आत्महत्या कर ली थी।" उसने जवाब दिया।

"आत्महत्या क्यों कर ली थी ?" भगवानने पूछा ।

सुरेन्द्रनाथने कहा—"मैं परीक्षामें फेल हो गया था ।"

"परीक्षामें फेल क्यों हो गये थे ?"

"भगतजीके [illegible] कारण मैं पढ़ नहीं सका । मेरा पद [illegible] !"

भगतजीको याद आया कि [illegible] उन्होंने [illegible] कि लोग इस परीक्षाके [illegible] में [illegible] मन लगाइए ।

भगवान्‌ने यमदूतोंसे कहा—"तुम्हारे पापोंको देखते हुए, मैं तुम्हें नरकमें डाल देनेका आदेश देता हूँ ।"

भगतजीने भागनेकी कोशिश की, पर यमराजके [illegible] दूतोंने उन्हें बन्द किया ।

अपने भगतजी, जिन्हें हम धर्मात्मा समझते थे नरक भोग रहे हैं ।

□ □

टार्च बेचनेवाले

वह पहले चौराहोंपर बिजलीके टार्च बेचा करता था। बीचमें कुछ दिन वह नहीं दिखा। कल फिर दिखा। मगर इस बार उसने दाढ़ी बढ़ा ली थी और लम्बा कुरता पहन रखा था।

मैंने पूछा—"कहाँ रहे? और यह दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है?"

उसने जवाब दिया—"बाहर गया था।"

दाढ़ीवाले सवालका उसने जवाब यह दिया कि दाढ़ीपर हाथ फेरने लगा।

मैंने कहा—"आज तुम टार्च नहीं बेच रहे हो?"

उसने कहा—"वह काम बन्द कर दिया। अब तो आत्माके भीतर टार्च जल उठा है। ये 'सूरजछाप' टार्च अब व्यर्थ मालूम होते हैं।"

मैंने कहा—"तुम शायद संन्यास ले रहे हो। जिसकी आत्मामें प्रकाश फैल जाता है, वह इसी तरह हरामखोरीपर उतर आता है। किससे दीक्षा ले आये?"

मेरी बातसे उसे पीड़ा हुई। उसने कहा—"ऐसे कठोर वचन मत बोलिए। आत्मा सबकी एक है। मेरी आत्माको चोट पहुँचाकर आप अपनी ही आत्माको घायल कर रहे हैं।"

मैंने कहा—"यह सब तो ठीक है। मगर यह बताओ कि तुम एका-एक ऐसे कैसे हो गये? क्या बीवीने तुम्हें त्याग दिया? क्या उधार मिलना बन्द हो गया? क्या साहूकारोंने ज्यादा तंग करना शुरू कर दिया? क्या चोरीके मामलेमें फँस गये हो? आखिर बाहरका टार्च

भीतर आत्मामें कैसे घुस गया ?"

उसने कहा—"आपके सब अन्दाज गलत हैं। ऐसा कुछ नहीं हुआ। एक घटना हो गयी है, जिसने जीवन बदल दिया। उसे मैं गुप्त रखना चाहता हूँ। पर क्योंकि मैं आज ही यहाँसे दूर जा रहा हूँ, इसलिए आपको सारा क़िस्सा सुना देता हूँ।"

उसने बयान शुरू किया—

"पाँच साल पहलेकी बात है। मैं अपने एक दोस्तके साथ हताश एक जगह बैठा था। हमारे सामने आसमानको छूता हुआ एक सवाल खड़ा था। वह सवाल था—"पैसा कैसे पैदा करें ?" हम दोनोंने उस सवालकी एक-एक टाँग पकड़ी और उसे हटानेकी कोशिश करने लगे। हमें पसीना आ गया, पर सवाल हिला भी नहीं। दोस्तने कहा—"यार इस सवालके पाँव जमीनमें गहरे गड़े हैं। यह उखड़ेगा नहीं। इसे टाल जायें।"

हमने दूसरी तरफ़ मुँह कर लिया। पर वह सवाल फिर हमारे सामने आकर खड़ा हो गया। तब मैंने कहा—"यार, यह सवाल टलेगा नहीं। चलो, इसे हल ही कर दें। पैसा पैदा करनेके लिए कुछ काम-धन्धा करें। हम इसी वक़्त अलग-अलग दिशाओंमें अपनी-अपनी क़िस्मत आज़माने निकल पड़ें। पाँच साल बाद ठीक इसी तारीख़को इसी वक़्त हम यहाँ मिलें।"

दोस्तने कहा—"यार, साथ ही क्यों न चलें ?"

मैंने कहा—"नहीं। क़िस्मत आजमानेवालोंकी जितनी पुरानी कथाएँ मैंने पढ़ी हैं, सबमें वे अलग-अलग दिशामें जाते हैं। साथ जानेमें क़िस्मतोंके टकराकर टूटनेका डर रहता है।"

तो साहब, हम अलग-अलग चल पड़े। मैंने टार्च बेचनेका धन्धा शुरू कर दिया। चौराहेपर या मैदानमें लोगोंको इकट्ठा कर लेता और बहुत नाटकीय ढंगसे कहता—"आजकल सब जगह अँधेरा छाया रहता है। रातें बेहद काली होती हैं। अपना ही हाथ नहीं सूझता। आदमीको

रास्ता नहीं दिखता। वह भटक जाता है। उसके पाँव काँटोंसे बिंध जाते हैं, वह गिरता है और उसके घुटने लहूलुहान हो जाते हैं। उसके आसपास भयानक अँधेरा है। शेर और चीते चारों तरफ घूम रहे हैं, साँप जमीनपर रेंग रहे हैं। अँधेरा सबको निगल रहा है। अँधेरा घरमें भी है। आदमी रातको पेशाब करने उठता है और साँपपर उसका पाँव पड़ जाता है। साँप उसे डस लेता है और वह मर जाता है।"

आपने तो देखा ही है, साहब, कि लोग मेरी बातें सुनकर कैसे डर जाते थे। भर-दोपहरमें वे अँधेरेके डरसे काँपने लगते थे। आदमीको डराना कितना आसान है!

लोग डर जाते, तब मैं कहता—"भाइयो, यह सही है कि अँधेरा है। मगर प्रकाश भी है। वही प्रकाश मैं आपको देने आया हूँ। हमारी 'सूरज छाप' टार्चमें वह प्रकाश है, जो अन्धकारको दूर भगा देता है। इसी वक्त 'सूरजछाप' टार्च खरीदो और अँधेरेको दूर करो। जिन भाइयोंको चाहिए, ऊँचा हाथ करें।"

साहब, मेरे टार्च बिक जाते और मैं मजेमें जिन्दगी गुजारने लगा।

वायदेके मुताबिक ठीक पाँच साल बाद मैं उस जगह पहुँचा जहाँ मुझे दोस्तसे मिलना था। वहाँ दिन-भर मैंने उसकी राह देखी, वह नहीं आया। क्या हुआ? क्या वह भूल गया? या अब वह इस असार संसारमें ही नहीं है?

मैं उसे ढूँढ़ने निकल पड़ा।

एक शाम जब मैं एक शहरकी सड़कपर चला जा रहा था, मैंने देखा कि पासके मैदानमें खूब रोशनी है और एक तरफ़ मंच सजा है। लाउड-स्पीकर लगे हैं। मैदानमें हज़ारों नर-नारी श्रद्धासे झुके बैठे हैं। मंचपर सुन्दर रेशमी वस्त्रोंसे सजे एक भव्य पुरुष बैठे हैं। वे खूब पुष्ट हैं, सँवारी हुई लम्बी दाढ़ी है और पीठपर लहराते लम्बे केश हैं।

मैं भीड़के एक कोनेपर जाकर बैठ गया।

भव्य पुरुष फ़िल्मोंके सन्त लग रहे थे। उन्होंने गुरु-गम्भीर वाणीमें प्रवचन शुरू किया। वे इस तरह बोल रहे थे जैसे आकाशके किसी कोनेसे कोई रहस्यमय सन्देश उनके कानमें सुनाई पड़ रहा है जिसे वे भाषा दे रहे हैं।

वे कह रहे थे—"मैं आज मनुष्यको एक घने अन्धकारमें देख रहा हूँ। उसके भीतर कुछ बुझ गया है। यह युग ही अन्धकारमय है। यह सर्वग्राही अन्धकार सम्पूर्ण विश्वको अपने उदरमें छिपाये है। आज मनुष्य इस अन्धकारसे घबरा उठा है। वह पथभ्रष्ट हो गया है। आज आत्मामें भी अन्धकार है। अन्तरकी आँखें ज्योतिहीन हो गयी हैं। वे उसे भेद नहीं पातीं। मानव-आत्मा अन्धकारमें घुटती है। मैं देख रहा हूँ, मनुष्यकी आत्मा भय और पीड़ासे त्रस्त है।"

इसी तरह वे बोलते गये और लोग स्तब्ध सुनते गये।

मुझे हँसी छूट रही थी। एक-दो बार दबाते-दबाते भी हँसी फूट गयी और पासके श्रोताओंने मुझे डाँटा।

भव्य पुरुष प्रवचनके अन्तपर पहुँचते हुए कहने लगे—"भाइयो और बहनो, डरो मत। जहाँ अन्धकार है, वहीं प्रकाश है। अन्धकारमें प्रकाशकी किरण है, जैसे प्रकाशमें अन्धकारकी किंचित् कालिमा है। प्रकाश भी है। प्रकाश बाहर नहीं है, उसे अन्तरमें खोजो। अन्तरमें बुझी उस ज्योतिको जगाओ। मैं तुम सबका उस ज्योतिको जगानेके लिए आवाहन करता हूँ। मैं तुम्हारे भीतर वही शाश्वत ज्योतिको जगाना चाहता हूँ। हमारे 'साधना मन्दिर'में आकर उस ज्योतिको अपने भीतर जगाओ।"

साहब, अब तो मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। पासके लोगोंने मुझे धक्का देकर भगा दिया। मैं मंचके पास जाकर खड़ा हो गया।

भव्य पुरुष मंचसे उतरकर कारपर चढ़ रहे थे। मैंने उन्हें ध्यानसे पाससे देखा। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, इसलिए मैं थोड़ा झिझका। पर मेरी तो दाढ़ी नहीं थी। मैं तो उसी मौलिक रूपमें था। उन्होंने मुझे

पहचान लिया। बोले—'अरे तुम!' मैं पहचानकर बोलने ही वाला था कि उन्होंने मुझे हाथ पकड़कर कारमें बिठा लिया। मैं फिर कुछ बोलने लगा तो उन्होंने कहा—"बँगले तक कोई बातचीत नहीं होगी। वहीं ज्ञान-चर्चा होगी।"

मुझे याद आ गया कि वहाँ ड्राइवर है।

बँगलेपर पहुँचकर मैंने उसका ठाठ देखा। उस वैभवको देखकर मैं थोड़ा झिझका, पर तुरन्त ही मैंने अपने उस दोस्तसे खुलकर बातें शुरू कर दीं।

मैंने कहा—"यार तू तो बिलकुल बदल गया।"

उसने गम्भीरतासे कहा—"परिवर्तन जीवनका अनन्त क्रम है।"

मैंने कहा—"साले, फिलासफी मत बघार। यह बता कि तूने इतनी दौलत कैसे कमा ली पाँच सालोंमें ?"

उसने पूछा—"तुम इन सालोंमें क्या करते रहे ?"

मैंने कहा—"मैं तो घूम-घूमकर टार्च बेचता रहा। सच बता, क्या तू भी टार्चका व्यापारी है ?"

उसने कहा—"तुझे क्या ऐसा ही लगता है ? क्यों लगता है ?"

मैंने उसे बताया कि जो बातें मैं कहता हूँ वही तू कह रहा था।

मैं सीधे ढंगसे कहता हूँ; तू उन्हीं बातोंको रहस्यात्मक ढंगसे कहता है। अँधेरेका डर दिखाकर लोगोंको टार्च बेचता हूँ। तू भी अभी लोगोंको अँधेरेका डर दिखा रहा था, तू भी जरूर टार्च बेचता है।

उसने कहा—"तुम मुझे नहीं जानते। मैं टार्च क्यों बेचूँगा! मैं साधु, दार्शनिक और सन्त कहलाता हूँ।"

मैंने कहा—"तुम कुछ भी कहलाओ, बेचते तुम टार्च हो। तुम्हारे और मेरे प्रवचन एक-जैसे हैं। चाहे कोई दार्शनिक बने, सन्त बने या साधु बने, अगर वह लोगोंको अँधेरेका डर दिखाता है, तो जरूर अपनी कम्पनी-का टार्च बेचना चाहता है। तुम-जैसे लोगोंके लिए हमेशा ही अन्धकार

छाया रहता है। बताओ, तुम्हारे-जैसे किसी आदमीने हजारोंमें कभी भी यह कहा है कि आज दुनियामें प्रकाश फैला है? कभी नहीं कहा। क्यों? इसलिए कि उन्हें अपनी कम्पनीका टार्च बेचना है। मैं खुद भर-दोपहरमें लोगोंसे कहता हूँ कि अन्धकार छाया है। बता किस कम्पनीका टार्च बेचता है?"

मेरी बातोंने उसे ठिकानेपर ला दिया था। उसने सहज ढंगसे कहा—"तेरी बात ठीक ही है। मेरी कम्पनी नयी नहीं है, सनातन है।"

मैंने पूछा—"कहाँ है तेरी दुकान? नमूनेके लिए एकाध टार्च तो दिखा। 'सूरजछाप' टार्चसे बहुत ज्यादा बिक्री है उसकी।"

उसने कहा—"उस टार्चकी कोई दुकान बाजारमें नहीं है। वह बहुत सूक्ष्म है। मगर कीमत उसकी बहुत मिल जाती है। तू एक-दो दिन रह, तो मैं तुझे सब समझा देता हूँ।"

"तो साहब मैं दो दिन उसके पास रहा। तीसरे दिन 'सूरजछाप' टार्चकी पेटीको नदीमें फेंककर नया काम शुरू कर दिया।"

वह अपनी दाढ़ीपर हाथ फेरने लगा। बोला—"बस, एक महीनेकी देर और है।"

मैंने पूछा—"तो अब कौन-सा धन्धा करोगे?"

उसने कहा—"धन्धा वही करूँगा—यानी टार्च बेचूँगा। बस कम्पनी बदल रहा हूँ।"

मन्नू भैयाकी बारात

चाचा जेब काटनेका अभ्यास कर रहे थे।

वे हम लोगोंको पुराने कपड़े पहनाकर जेबमें पैसे रख देते और सफ़ाई-से जेब काटनेकी कोशिश करते। थोड़े ही दिनोंमें वे इतने कुशल हो गये कि दिनमें दो-तीन बार हमारी जेब काट लेते और हमें पता नहीं चलता।

मुझे बड़ा अटपटा लगता। अपने ही चाचा जेब काटें, सो परेशानी होती है। फिर मैं हैरान था कि ये ऐसा क्यों कर रहे हैं।

एक दिन मैंने चाचीसे पूछा—"चाची, चाचाजी जेब काटना क्यों सीख रहे हैं? क्या वे नौकरीसे निकाले जानेवाले हैं?"

चाचीने कहा—"नहीं रे, वे तो बारातकी तैयारी कर रहे हैं। अगले महीने मन्नूकी शादी है न। फिर चुन्नूकी होगी और उसके बाद मुन्नूकी। विद्या है, अभी सीख लेंगे, तो आगे भी काम आयेगी।"

फिर भी मेरी समझमें बात नहीं आयी। मैंने कहा—"मगर चाची, शादीके लिए जेब काटना सीखनेकी क्या ज़रूरत है?"

चाची हँसी। कहने लगी—"तू नादान है। कभी बारातमें नहीं गया न! अब मन्नूकी बारातमें जायेगा, तो सब समझ जायेगा।"

शादीकी तैयारी बड़े ज़ोरसे हो रही थी।

बारात रवाना होनेको जब तीन-चार दिन बचे, तब एक दिन चाचा और मामा सलाह कर रहे थे कि बारातमें कौन-कौन चलेंगे।

चाचाने कहा—"कुछ लोगोंको ले जाना तो ज़रूरी होता है, जैसे हमें तीन-चार अच्छे पेशेवर जेबकट चाहिए। तुम स्टेशन जाकर तीन-चार

वेश्याओंसे तय कर लेना ।"

मामाने कहा—"अब आपने कहा तीन जेबकट अच्छी तरह सोच लिया है, सब और जेबकट क्यों ले चलते हो ? भगवान्‌का दिया घरमें सब कुछ तो है ।"

चाचाने कहा—"भाई, मैं हूँ नया आदमी । सारा काम मुझसे सँभलेगा नहीं । इसलिए तीन-चार जेबकट अपने साथ होने ही चाहिए । थोड़े जगहँसाई हो, इससे क्या फ़ायदा !"

मामाने कागजपर नोट कर लिया । फिर पूछा—"हाँ, और ?"

चाचाने कहा—"और दो चोर और दो डाकू भी चाहिए । मैंने अपने दोस्त दरोगा दयाशंकरसे कह दिया है । वे इन्तजाम कर देंगे ।"

मामाने लिख लिया । बोले—"हमें एक-दो पागल भी तो ले जाने होंगे ।"

चाचाने कहा—"एक-दो नहीं, कमसे कम पाँच । पर बड़ी कोशिश करनेपर दो पागल मिल सके हैं । कमसे कम तीन और चाहिए ।"

दोनों थोड़ी देर चुप बैठे रहे । फिर एकाएक मामाका चेहरा चमक उठा । उन्हें कोई बात सूझ गयी थी । वे चुटकी बजाकर बोले—"समस्या सुलझ गयी ! ऐसा करें, तीन समाजवादी ले चलें । ये लोग भी अच्छे करिश्मे दिखाते हैं । दो वे और तीन ये, कुल पाँच हो जायेंगे ।"

चाचाको सुझाव पसन्द आ गया । उन्होंने कहा—"ठीक है । तुम आज ही उनके पार्टी-दफ़्तर जाकर तीन आदमी पक्के कर लो । इस तरह तेरह-चौदह तो ये कामके आदमी हो गये । अब पन्द्रह-बीस निकम्मे आदमी ले ही जाना होगा जो शरीफ़ कहलाते हैं । तुम अपनी बहनके साथ बैठकर इनकी लिस्ट बना लो ।"

बारात तैयार होकर स्टेशन पहुँच गयी । हमें देखते ही मुसाफ़िरोंमें खलबली मच गयी । वे डरके मारे यहाँ-वहाँ भागने लगे । लोगोंने अपने सामान और बच्चोंको सँभाला । पुलिसने स्त्रियोंको अपने संरक्षणमें

ले लिया।

टिकिटघरकी खिड़कीके पास एक सूचना चिपकी थी—

"मुसाफिरोंको चेतावनी दी जाती है कि इस गाड़ीसे बारात जा रही है। वे स्त्री-बच्चोंको लेकर सफर न करें। अपने सामानको सँभाल कर रखें। किसीके जान-मालकी ज़िम्मेदारी रेलवेपर न होगी।"

नोटिसको पढ़-पढ़कर बहुत-से मुसाफिर घर लौटने लगे।

हम लोग रेलके डब्बेमें जाकर बैठ गये। हमारे डब्बेके पास कोई आदमी नहीं था। खोमचेवाले भी दूरसे ही लौट जाते थे। हमें यह अच्छा नहीं लग रहा था। हमारे साथके एक पागलने कहा—"यह तो हमारा अपमान है। जब हमने टिकिट लिया है, तो हमारे पास खोमचे-वालोंको आना चाहिए।"

ऐसा कहकर वे डब्बेसे कूद पड़े और दो-तीन खोमचोंको उलटा आये। इसके बाद दोनों डाकू पहुँचे और खानेका सामान छीनकर ले आये। हम सब बहुत खुश हुए। चाचाने मामासे कहा—"बरातियोंका चुनाव अच्छा हुआ मालूम होता है।"

मामाने कहा—"हाँ लक्षण तो अच्छे हैं। बाकी वहीं देखेंगे।"

हमारे डब्बेके पाससे दो आदमी निकले। उन लोगोंने नोटिस नहीं पढ़ा होगा। उन्हें देखते ही हमारे पागल झपटे और उन्हें काट लिया।

रेलवे-कर्मचारियोंमें हलचल मच गयी थी। वे हमारे कारण चिन्तित थे। बार-बार डब्बेके पास आकर हमें देखते और लौट जाते। आखिर एक कर्मचारी हाथमें एक तख्ती लेकर आया और उसने उसे हमारे डब्बेपर लगा दिया।

उसपर बड़े अक्षरोंमें लिखा था—"कुत्तोंसे सावधान!"

हमारी गाड़ी रवाना हुई। स्टेशनपर स्टेशन आते थे। ज्योंही गाड़ी खड़ी होती, हम लोग खूब जोरसे चिल्लाते जिसे सुनकर मुसाफिर भाग पड़ते और कुत्ते भूँकने लगते।

एक साहबने जंजीर खींचकर बीचमें ही गाड़ी रोक दी। गार्ड घूमता हुआ इधर आया और पूछने लगा—"किसने जंजीर खींची?"

साहबने कहा—"हमने।"

गार्डने पूछा—"क्यों? क्या बात है?"

हम लोगोंने एक साथ कहा—"हम लोग गाड़ीको सिरपर उठाकर ले जायेंगे।"

गार्डने कहा—"अच्छी बात है, उठा ले जाइए।"

हम लोगोंने बहुत जोर लगाया, पर गाड़ी उठाकर नहीं ले जा सके। आखिर गार्डने झुंझलाकर गाड़ी चलानेका इशारा किया।

चाचा उदास हो गये। कहने लगे—"अब बारातें कमजोर होने लगीं। पहलेकी बात और थी। बड़े भैयाकी शादीमें हम लोगोंने गाड़ीको सिरपर उठा लिया था।"

हम लोग लज्जित हो गये।

कई घण्टोंके सफ़रके बाद हम लड़कीवालेके शहर पहुँच गये। वहाँ हमें एक सजे हुए जनवासेमें ठहरा दिया गया। हम लोगोंने मुँह-हाथ धोकर अच्छे कपड़े पहने।

थोड़ी देर बाद बाजे-गाजेके साथ बारात वधूके घर पहुँची।

वहाँ बराती और घराती गले मिलने लगे।

लड़कीका बाप चाचासे गले मिला। दोनों परस्पर लिपट गये।

चाचाने मौक़ा देखकर सफ़ाईसे लड़कीके बापका जेब काट लिया।

बाक़ी पेशेवर जेबकटोंने यह इशारा पाकर वधू-पक्षके कई लोगोंके जेब काट लिये।

जनवासेमें लौटे, तो चाचा बहुत खुश थे। कहने लगे—"श्रीगणेश अच्छा हुआ। मन्नूकी लग्न शुभ है।"

उन्होंने उन जेबकटोंको बधाई दी। वे शरमा गये। कहने लगे—"तारीफ तो हमें आपकी करना चाहिए। हम पचीसों बारातोंमें गये हैं, पर जिस सफाईसे आपने लड़कीके बापकी जेब काटी, वह हमने पहले किसी वरके बापमें नहीं देखी।"

चाचाने मुसकराकर कहा—"अच्छा''' अच्छा, अब दूसरे लोग अपना काम करें।"

दूसरे लोग भी अपना-अपना कार्य पूरा करनेके लिए कटिबद्ध हो गये।

लड़कीवाले नाश्ता लेकर अब आये, तो पागलोंने तश्तरियोंको सूँघकर फेंक दिया और कहा—"इसे कुत्तोंको खिला दो। सड़े घीकी कितनी बदबू आ रही है!"

हमने पागलोंका अनुसरण किया और अपनी-अपनी तश्तरियाँ फेंक दी।

थोड़ी देर बाद दूसरा नाश्ता आया और हमने उसे भी फेंक दिया।

तीसरी बार जो नाश्ता आया, उसे पागल खाने लगे। हमने भी वैसा ही किया।

नाश्ता करनेके बाद पागल गिलास और बल्ब फोड़ने लगे। इस कामसे निपटकर उन्होंने कुछ कुरसियाँ तोड़ीं।

बीच-बीचमें एक पागल लड़कीके घरके सामने खड़ा होकर चिल्लाता—"हम बारात वापस ले जायेंगे!" यह सुनकर लड़कीका बाप भागता आता और चाचाके पैरोंपर सिर रख देता।

उधर समाजवादी भी काममें लग गये थे। वे ब्लेडसे गद्दे फाड़ रहे थे। मैंने कहा—"अच्छा, आप लोग गद्दे फाड़ रहे हैं!"

वे बोले—"गद्दे नहीं फाड़ रहे हैं, आन्दोलन कर रहे हैं।"

मैंने कहा—"ऐसा कैसा आन्दोलन?"

वे समझाने लगे—"देखो, ये गद्दे वह किसी सेठसे माँगकर लाया

होगा। हम सेठके गद्दे फाड़कर पूँजीवादका नाश कर रहे हैं।"

मैंने कहा—"यों भी ठीक है, पर यह सेठ लड़कीके बापसे तो कहेगा!"

उन्होंने कहा—"हाँ, यही तो गर्मागर्मीकी भूमिका तैयार होगी!"

मैं उनके तर्कसे निरुत्तर हो गया। वे गद्दे फाड़ने लगे।

रात आधी हो गयी थी। चाचाने चोरोंको बुलाकर कहा—"अब तुम लोगोंके काम करनेका समय आ गया। लड़कीवालेके घरमें घुसकर जो भी मालमता हो, चुरा लाओ।"

चोर चोरी करने चले गये। चौथे पहर वे बहुत-सा सामान चुराकर ले आये। चाचाने देखा और कहा—"काम तो ठीक हुआ है, पर सोना और रुपये कम आये। खैर, जाओ, सो जाओ।"

सुबह चाचाने डाकुओंसे कहा—"रातको चोर सोना और नक़दी कम लेकर आये। डर गये होंगे। चोर ज़रा डरपोक होते ही हैं। अब तुम जाकर सोना और नक़दी लूट लाओ।"

डाकू मूँछोंपर ताव देते हुए चले गये। घण्टे-भर बाद ही वे काफ़ी सोना और नक़दी लूटकर ले आये। चाचाने उनकी पीठ ठोंकी। दोपहरको खबर आयी कि बधूका बाप बेहोश हो गया।

चाचा प्रसन्न हुए। कहने लगे—"इसका मतलब है कि बारात कमजोर नहीं है। लड़कीका बाप भी भाग्यवान् है। वह विदेह हो गया।"

मैंने कहा—"चाचा, विदेह तो जनकको कहते थे।"

चाचाने कहा—"हाँ लेकिन विदेह नाम कब पड़ा? जब उनके घर रामकी बारात पहुँची, तो वे घबड़ाकर बेहोश हो गये; सुध-बुध खो बैठे। लोगोंने कहा कि जनक तो 'विदेह' हो गये। तभीसे उनका 'विदेह' नाम भी चल पड़ा। मन्नूका ससुर भी विदेह हो गया है। अपना मन्नू बड़ा भाग्यवान् है।"

उस शामको स्त्रियोंको छेड़नेका कार्यक्रम बना। चाचाने मुझसे कहा—"तुम भी आओ। छेड़ो, तंग करो।"

मैंने कहा—"मुझे यह अच्छा नहीं लगता।"

चाचाने कहा, "इसमें अच्छा-बुरा लगनेकी बात नहीं है। यह तो एक कर्तव्य है। देशके हितमें यह जरूरी है।"

मैंने कहा—"स्त्रियोंको छेड़नेमें देशका क्या हित होगा?"

चाचाने समझाया—"देखो,—लड़कीवालोंके यहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ अच्छे कपड़े पहनकर आयी हैं। उन्हें अगर बराती न छेड़ेंगे, तो हजारों गज अच्छा कपड़ा व्यर्थ सिद्ध होगा। तब अच्छे कपड़ेकी बिक्री नहीं होगी। इससे वस्त्र-उद्योगपर संकट आ जायेगा। तुम जानते ही हो कि चीनी हमलेके कारण देश इस समय नाजुक दौरसे गुजर रहा है। ऐसेमें अगर किसी उद्योगपर संकट आ जाये, तो देश कमजोर होगा। इसलिए राष्ट्र-हितको देखते हुए स्त्रियोंको छेड़ना जरूरी है।"

चाचाके तर्कसे मैं बहुत प्रभावित हुआ और छेड़छाड़में सम्मिलित हो गया। तीन दिन हमने वहाँ बड़े मजेमें गुजारे। चौथे दिन बारात विदा हुई।

हम स्टेशन आये। गाड़ीमें बैठनेके बाद हमें खबर मिली कि बहूके पिताकी मृत्यु हो गयी।

चाचा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने हाथ जोड़े और आकाशकी तरफ देखते हुए कहा—"सब भगवान्‌की कृपा है। मेरे घरमें यह पहली शादी है। ईश्वरकी कृपासे यह इस हद तक सफल रही। मन्नूके ग्रह अच्छे पड़े हैं। भगवान् चाहेगा, तो चुन्नू और मुन्नूकी शादी और अच्छी होगी।"

■ ■

एक ज़ोरदार लड़केकी कहानी

रचना-प्रक्रिया—पिछले दो महीनेसे मैं प्रेमकथा लिखनेकी कोशिश कर रहा हूँ और अब कहीं लिख पा रहा हूँ। मेरी सबसे बड़ी कठिनाई थी कि मुझे नायक-नायिकाके नाम नहीं सूझ रहे थे। प्रेमकथामें नायिका-का नाम सबसे महत्त्वपूर्ण है। कहानी तो फिर मिनटोंमें बन जाती है। नायिकाके नामसे कहानीका 'पैटर्न' तय हो जाता है और कहानी खुद अपनेको लिख लेती है। मेरा एक प्रेमकथा-लेखक मित्र तो जादू करता है। वह शामको कोरे कागजपर लड़कीका नाम लिख देता है और सवेरे देखता है कि कहानी लिख गयी है। एक शाम उसने मेरे सामने कागजपर 'सावित्री' लिखकर रख दिया। सवेरे उठकर मैंने देखा कि कहानी लिख गयी है और सावित्री आत्महत्या कर चुकी। बात यह है कि कौन स्त्री कैसा प्रेम करेगी, यह तो साहित्यमें पहलेसे तय है। कौशल्याका प्रेम एक प्रकारका होगा, सुनीताका दूसरे प्रकारका और अरुन्धतीका तीसरे प्रकारका। मिनू, बिनू, उषी और पुशी बिलकुल नये क़िस्मका प्रेम करेंगी। कौशल्या बापके दबावमें जरूर दूसरेसे शादी कर लेगी, रागिनी जरूर तपेदिक़से मरेगी और रंजना एक-दो प्रेमियोंको 'जिल्ट' करेगी, यानी धता बतायेगी। सब नामकी माया है। तभी तो कहानीकार एक सालमें नाम खोजता है और एक घण्टेमें उसकी कहानी लिखता है।

नामकी खोजमें मैं बहुत भटका। एक दिन आयुर्वेदिक दवाओंकी एक दूकानके पाससे गुजर रहा था कि मेरी नजर विज्ञापन बोर्डपर पड़ी। मैं ठिठक गया। लिखा था—"ग्रीष्म ऋतुमें शीतलताके लिए पीजिए—सीरप शंखपुष्पी!" अहा, शंखपुष्पी! यह नाम किसी लेखकको नहीं सूझा और मैं इसे न खोजता, तो 'शंखपुष्पी' की कहानी २१वीं शताब्दी-में हिन्दी-साहित्यका कोश भरती। मैंने वहीं तय किया कि नायिकाका नाम 'शंखपुष्पी' होगा जो प्यारमें 'पुष्पी' कही जायेगी, प्यार और बढ़ने-पर 'पु' कही जायेगी। नायककी समस्या भी वहीं हल हो गयी। बोर्डपर लिखा था—"अशोकारिष्ट"। मैंने तय किया, नायक अशोका-रिष्ट होगा, जिसे प्यारमें 'अशोक' या 'अरिष्ट' कहा जायेगा, गुस्सेमें 'अनिष्ट' और तिरस्कारमें 'हिष्ट'।

· इस तरह नामोंकी समस्या हल हो गयी। मैं हिन्दीका एकमात्र ऐसा लेखक हूँ जिसे एक ही मेडिकल स्टोरमें नायक-नायिका, दोनोंके नाम मिल गये।

इसके बाद तो घण्टे-भरमें मैंने कहानी लिख दी।

किसी नगरमें एक आदमी रहता था, जिसे क्वाँरा होनेके कारण 'लड़का' कहते थे। उसका नाम अशोकारिष्ट था। उसी नगरमें, दूसरे मुहल्लेमें एक लड़की रहती थी, जिसका नाम शंखपुष्पी था।

[यह आदिम शैली है। इसे छोड़कर 'मिक्सटीज़' की शैलीपर आ जाता हूँ।]

अशोकारिष्ट रेस्तराँके केबिनमें बैठा था।

रेस्तराँमें दो प्रकारके प्रेम-केबिन बनाये गये थे—एक उनके लिए जो किसीसे प्रेम करते हैं, और दूसरा उनके लिए जो अपने-आपसे प्यार करते हैं।

अशोकारिष्ट पहले दूसरे प्रकारके केबिनमें बैठा करता था। आज-से उसने पन्द्रह दिनके लिए पहले प्रकारका केबिन किरायेपर ले

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] और उसमें [illegible] डालते [illegible] है। [illegible] देखता है, [illegible] देखता है!

"[illegible], आंटी!"

[illegible] आ गयी। वह देखता है। वह बैठ जाती है।

"पूनी!"

"हूँ!"

"पूनी!"

"......"

"पू"

"...."

इस तरहका वार्तालाप लगभग आधा घण्टा चलता है।

सिगरेटकी कपमें झाड़ते हुए और राखको कॉफ़ीमें घुलते हुए देखता अशोकसिंह बोला—"मुझे समझनेकी कोशिश करो पु!"

शंखपुष्पीने कहा—"तुम अपने-आपको समझनेकी कोशिश करो, अशोक !"

अशोक डूब गया। गहरेसे बोला—"मेरा जीवन एक 'क्रासवर्ड पज़ल' है, पु, जिसमें कितने ही गन्दर्भहीन शब्द छिपे हैं—ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर ! मैं रिक्त स्थानोंमें अक्षर भरनेकी कोशिश करता हूँ, पर शब्द ठीक नहीं बनते। तुम वह सीलबन्द लिफ़ाफ़ा हो, जिसमें सही हल रखा है। पुष्पी, तुम वह लिफ़ाफ़ा खोलो और मेरा सही हल निकाल दो।"

पुष्पी थोड़ी देर खिड़कीसे बाहर देखती रही। फिर बोली—"मेरा जीवन एक गणितकी पुस्तक है, जिसके अन्तके उत्तरके पन्ने तुमने फाड़कर रख लिये हैं। मैं प्रश्न हल करती हूँ, पर उत्तर नहीं मिला पाती। तुम मेरे उत्तरके पन्ने वापस कर दो, अरिष्ट !"

अशोकारिष्ट मौन ! शंखपुष्पी भी मौन !

आधा घण्टा और बीत गया।

अशोकारिष्ट बोला—"मेरी ज़िन्दगी क्या है ? एक इस्पातका कारख़ाना, जिसकी 'ब्लास्ट फर्नेस' नष्ट हो गयी है। तुम मेरी पंचवर्षीय योजनाको क्यों 'सेबटाज' कर रही हो, मेरी पु ?"

शंखपुष्पी सुनती रही, सुनती रही और अपनेमें डूबती रही। उसने खिड़कीसे बाहर देखते हुए कहा—"पर मेरी ज़िन्दगी तो बोकारोका इस्पात कारखाना है, जिसके लिए मदद देनेका वादा करके तुम अमेरिका-की तरह मुकर रहे हो, रिष्ट !"

शाम होने लगी। धूप मुरझा गयी।

अशोकारिष्टने खिड़कीसे बाहर देखा। शंखपुष्पीने भी खिड़कीसे बाहर देखा।

दोनों उठे।

! ! ! ? ? !

दोनों दो दिशाओंको मुड़े ।

शंखपुष्पीने कहा—"मेरी मोमबत्ती दोनों सिरोंसे जल रही है, अशोक !"

अशोकारिष्टने कहा—"मेरी मोमबत्ती तो हवाके कारण आग ही नहीं पकड़ रही ।"

दोनों गुमसुम खड़े रहे ।

शंखपुष्पीने कहा—"जाना ही होगा । तुमसे दूर एक-एक क्षण एक युगके बराबर भारी हो जाता है ।"

अशोकारिष्टने टोका—"यह तुम क्या कहती हो ? 'थर्टीज'की प्रेमिका-की तरह बात न करो, पुष्पी ! शरीरसे दूर होकर भी मैं हमेशा तुम्हारे पास हूँ । अपने हृदयमें झाँककर देखो । वहाँ मैं निरन्तर हूँ ।"

शंखपुष्पी हँसी । कहने लगी—"तुम भी 'ट्वेंटीज'के नायक-जैसी बात कर रहे हो ।"

अशोकारिष्टने कहा—"हाँ पुष्पी, हम सभी पीछे जाते हैं, आदिम अवस्थाकी दिशामें । हमारे भीतर 'आदिम अग्नि' है न !"

दोनों विपरीत दिशामें चल पड़े ।

एक दिन केबिनसे उठते-उठते अशोकारिष्टने कहा—"पुष्पी, आज केबिनका किराया खत्म होता है । कलसे हम यहाँ नहीं बैठ सकेंगे । मैं कल एक सप्ताहके लिए जा रहा हूँ ।"

"कहाँ ?" शंखपुष्पीने कहा ।

"एक पहाड़ी डाक-बँगलेमें । दूर, इस शहरसे दूर, इसके अर्थहीन कोलाहलसे दूर, मुँह फैलाये बसें निगलती हुई इन सड़कोंसे दूर—सबसे, सबसे दूर !"

"वहाँ क्या करोगे ? "

"कुछ नहीं करूँगा । कर सकता ही नहीं । वहाँ एकान्त है, शून्य है । शून्यमें निश्चेष्ट अपनेको डाल दूँगा । पहाड़ीकी सन्ध्यामें खो जाना

चाहता हूँ।"

"और मेरा क्या होगा, अशोक ?"

"कुछ नहीं होगा। किसीका कुछ नहीं होता।"

शंखपुष्पीकी आँखोंमें आँसू आ गये।

अशोकारिष्ट रूमालमें मोती बटोरने लगा। बोला—"यह क्या, 'थर्टीज़'····की लड़की-जैसी रोती हो !"

पुष्पी हँसी—"तुम भी तो 'थर्टीज़'के प्रेमी-जैसे आँसू पोंछ रहे हो।"

आदिम अग्नि !

और निर्जन गुहा ! !

अशोकारिष्ट पहाड़ी डाक-बँगलेके बरामदेमें बैठा है। शाम हो गयी है। आस-पास धुँधलका है। सर्वत्र उदासी, घुटन ! नीचे झोंपड़ियाँ हैं, जिनके छप्परोंसे धुआँ निकल रहा है।

अन्धकार, उदासी और धुआँ !

हर शाम अशोक देखता है, देखता है और अपनेमें डूब-डूब जाता है।

सोचता है अशोक—शाम और धुआँ ! मेरे भीतर शाम बस गयी है और धुआँ छा गया है।

इधर शंखपुष्पी सात दिन निढाल पड़ी रही।

रीत गयी शंखपुष्पी !

रीत गया अशोकारिष्ट ! !

अशोकारिष्ट लौट आया।

शंखपुष्पीने कहा—"तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गये थे ? तुम आज न आते, तो मैं 'सेनेटोरियम' चली जाती।"

अशोक चौंका।

"क्यों ? सेनेटोरियम क्यों ?"

"मुझे तपेदिकके आसार नजर आने लगे थे।"

अशोकारिष्ट हँसा। बोला,—"नहीं, तुम्हें भ्रम है। तुम्हारे भीतर 'थर्टीज'की नायिका फिर आ गयी है। सुनो पु, अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा। तुमसे मुझे अब कोई दूर नहीं कर सकता। मैं तुम्हें पाकर रहूँगा। तुम्हें मुझसे कोई नहीं छीन सकता—न समाज, न धर्म, न परिवार। समाज चाहे जितने भी प्रहार करे, तुम्हारे पिता चाहे जो बाधाएँ डालें, मैं तुम्हें प्राप्त करूँगा। मैं किसीसे नहीं डरता। मैं सारे संसारको चुनौती देता हूँ।"

शंखपुष्पी हँसी। बोली—"अशोक, तुम 'फ़ार्टीज'के नायककी तरह क्यों वीर-वाक्य बोल रहे हो? वीरता दिखानेका इस मामलेमें कोई अवसर ही नहीं है। मेरे पिताजी राजी हैं।"

अशोकारिष्ट चौंक उठा। बोला—"राजी हैं? किसके लिए?"

"हमारे विवाहके लिए। मैंने पूछ लिया है।"

अशोकारिष्टको लगा कि उसके पाँव फूल उठे हैं।

"कब, कब कहा?" उसने भर्राये गलेसे पूछा।

पुष्पीने कहा—"कल। पर वे तो शुरूसे ही यह चाहते थे कि हमारी शादी हो जाये।"

"शुरूसे? फिर तुमने मुझे बताया क्यों नहीं?"

"क्या बताती? तुम्हारा मन तो जानती थी न!"

"पर मुझे पहलेसे सचेत तो करना था। तुमने ठीक 'ट्वेंटीज'की लड़की-जैसा बरताव किया है।"

वह सिर पकड़कर कुरसीपर बैठ गया।

शंखपुष्पीने उसके सिरपर हाथ रखा। बोली—"तुम इतने परेशान क्यों हो गये, अरिष्ट?"

अशोकारिष्टने कहा—"तुम मुझे समझनेकी कोशिश करो, पुष्पी!"

वह उठा और उसने शंखपुष्पीके पाँव पकड़ लिये।

कहा—"दीदी, तुम मुझे समझनेकी कोशिश करो! मैं तुमसे 'पवित्र

प्रेम' करता हूं और करता रहूंगा। दीदी, दीदी, मेरे सिरपर हाथ रखकर आशीष दो!"

शंखपुष्पी स्तम्भित रह गयी।

उसने कहा—"अशोक, तुम तो 'डायबेटीज'से भी नीचे चले गये। 'पवित्रप्रेम'का क्या अर्थ? बात तो सीधी है। मैंने पिताजीसे पूछ लिया है।"

अशोकारिष्ट गिड़गिड़ाया—"पुष्पी दीदी, मुझे समझनेकी कोशिश करो।"

अशोकारिष्ट 'दीदी-दीदी' कहता हुआ चला गया। शंखपुष्पी हतप्रभ खड़ी रही।

"दीदी, मेरे कपमें-से एक घूंट चाय पी लो। फिर मैं पी लूंगा।"

"मैं पी चुकी हूँ। मुझे इच्छा नहीं है।"

"तो इसे होठोंसे छू दो, दीदी! यह चाय अमृत हो जायेगी।"

और एक दिन शंखपुष्पीको अशोकारिष्टका एक पत्र मिला।

लिखा था—

"मेरी पुष्पी दीदी,

तुम्हारा यह अभागा अशोकारिष्ट, जिसे तुम प्यारसे 'हिप्ट' कहने लगी थी, अब कुछ दिनोंका मेहमान है। जीवन रिक्त और अर्थहीन हो गया है। मेरे भीतर-बाहर शून्य-ही-शून्य है।

तुम मेरे लिए दुःख न करना। बस, तुमसे एक ही प्रार्थना है, दीदी! जब मेरी अर्थी उठने लगे, तो तुम अपने कोमल हाथोंसे मेरे सिरको छू लेना। बस, इतना ही। मैं तर जाऊंगा। और अगर तुम किसी कारण न आ सको, तो गान्धीगंज पोस्ट ऑफिसके सामने वह जो वीणा रहती है, उससे कह देना कि मेरा सिर छू ले। अगर वीणा भी न आ सके, तो फिर तुम्हारे मुहल्लेमें वर्मा वकीलकी लड़की, जो तुमसे बड़ी है, उसीसे कह

देना कि मेरा माथा छू ले। और अगर किसी कारण सुभद्रा भी न आ सके, तो तुम जरा कष्ट करके आर्म टाउन चली जाना और वहाँ प्रोफ़ेसर डी० मित्रकी लड़की वसुधासे कह देना कि आकर मेरा माथा छू ले। और अगर वसुधा भी न मिले, तो दीदी, फिर तुम चली जाना रंजनाके पास। तुम उसे जानती हो। उसे भेज देना कि वह मेरा माथा छू ले।

बस, मेरा इतना काम करना, दीदी !

अभागा—

अशोकादित्य"

गंगापुत्री बड़बड़ाती, "उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें चला गया यह तो।"

चिट्ठी लानेवालेसे पूछा—"क्या हाल है उनके? क्या कर रहे हैं?"

उसने जवाब दिया—"बाबूजी, वे चौकमें नाट गा रहे थे अभी।"

भोलारामका जीव

ऐसा कभी नहीं हुआ था।

धर्मराज लाखों वर्षोंसे असंख्य आदमियोंको कर्म और सिफारिशके आधारपर स्वर्ग या नरकमें निवास-स्थान 'अलॉट' करते आ रहे थे। पर ऐसा कभी नहीं हुआ था।

सामने बैठे चित्रगुप्त बार-बार चश्मा पोंछ, बार-बार थूकसे पन्ने पलट, रजिस्टरपर रजिस्टर देख रहे थे। गलती पकड़में ही नहीं आ रही थी। आखिर उन्होंने खीझकर रजिस्टर इतने जोरसे बन्द किया कि मक्खी चपेटमें आ गयी। उसे निकालते हुए वे बोले—"महाराज, रिकार्ड सब ठीक है। भोलारामके जीवने पाँच दिन पहले देह त्यागी और यमदूतके साथ इस लोकके लिए रवाना भी हुआ, पर यहाँ अभीतक नहीं पहुँचा।"

धर्मराजने पूछा—"और वह दूत कहाँ है?"

"महाराज, वह भी लापता है।"

इसी समय द्वार खुले और एक यमदूत बड़ा बदहवास वहाँ आया। उसका मौलिक कुरूप चेहरा परिश्रम, परेशानी और भयके कारण और भी विकृत हो गया था। उसे देखते ही चित्रगुप्त चिल्ला उठे—"अरे, तू कहाँ रहा इतने दिन? भोलारामका जीव कहाँ है?"

यमदूत हाथ जोड़कर बोला—"दयानिधान, मैं कैसे बतलाऊँ कि क्या हो गया। आज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, पर भोलारामका जीव मुझे चकमा दे गया। पाँच दिन पहले जब जीवने भोलारामकी देहको त्यागा, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोककी यात्रा आरम्भ की। नगरके

बाहर ज्यों ही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायु-तरंगपर सवार हुआ त्यों ही वह मेरी चंगुलसे छूटकर न जाने कहाँ गायब हो गया। इन पाँच दिनोंमें मैंने सारा ब्रह्माण्ड छान डाला, पर उसका कहीं पता नहीं चला।"

धर्मराज क्रोधसे बोले—"मूर्ख ! जीवोंको लाते-लाते बूढ़ा हो गया, फिर भी एक मामूली बूढ़े आदमीके जीवने तुझे चकमा दे दिया।"

दूतने सिर झुकाकर कहा—"महाराज, मेरी सावधानीमें बिलकुल कसर नहीं थी। मेरे इन अभ्यस्त हाथोंसे, अच्छे-अच्छे वकील भी नहीं छूट सके। पर इस बार तो कोई इन्द्रजाल ही हो गया।"

चित्रगुप्तने कहा—"महाराज, आजकल पृथ्वीपर इस प्रकारका व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तोंको कुछ चीज़ भेजते हैं और उसे रास्तेमें ही रेलवेवाले उड़ा लेते हैं। होजरीके पार्सलोंके मोजे रेलवे अफ़सर पहनते हैं। मालगाड़ीके डब्बेके डब्बे रास्तेमें कट जाते हैं। एक बात और हो रही है। राजनैतिक दलोंके नेता विरोधी नेताको उड़ाकर बन्द कर देते हैं। कहीं भोलारामके जीवको भी तो किसी विरोधीने मरनेके बाद खराबी करनेके लिए नहीं उड़ा दिया ?"

धर्मराजने व्यंग्यसे चित्रगुप्तकी ओर देखते हुए कहा—"तुम्हारी भी रिटायर होनेकी उम्र आ गयी। भला भोलाराम-जैसे नगण्य, दीन आदमीसे किसीको क्या लेना-देना ?"

इसी समय कहींसे घूमते-घामते नारद मुनि वहाँ आ गये। धर्मराजको गुमसुम बैठे देख बोले—"क्यों धर्मराज, कैसे चिन्तित बैठे हैं ? क्यों नरकमें निवास-स्थानकी समस्या अभी हल नहीं हुई ?"

धर्मराजने कहा—"वह समस्या तो कभीकी हल हो गयी। नरकमें पिछले सालोंमें बड़े गुणी कारीगर आ गये हैं। कई इमारतोंके ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनायीं। बड़े-बड़े इंजीनियर भी आ गये हैं, जिन्होंने ठेकेदारोंसे मिलकर पंचवर्षीय योजनाओंका पैसा खाया। ओवर-सीयर हैं, जिन्होंने उन मजदूरोंकी हाज़िरी भरकर पैसा

हड़पा, जो कभी कामपर गये ही नहीं। इन्होंने बहुत जल्दी नरकमें कई इमारतें तान दी हैं। वह समस्या तो हल हो गयी, पर एक बड़ी विकट उलझन आ गयी है। भोलाराम नामके एक आदमीकी पाँच दिन पहले मृत्यु हुई। उसके जीवको यह दूत यहाँ ला रहा था, कि जीव इसे रास्ते-में चकमा देकर भाग गया। इसने सारा ब्रह्माण्ड छान डाला, पर वह कहीं नहीं मिला। अगर ऐसा होने लगा, तो पाप-पुण्यका भेद ही मिट जायेगा।"

नारदने पूछा—"उसपर इनकमटैक्स तो बकाया नहीं था? हो सकता है, उन लोगोंने रोक लिया हो।"

चित्रगुप्तने कहा—"इनकम होती तो टैक्स होता। भुखमरा था।"

नारद बोले—"मामला बड़ा दिलचस्प है। अच्छा मुझे उसका नाम, पता तो बताओ। मैं पृथ्वीपर जाता हूँ।"

चित्रगुप्तने रजिस्टर देखकर बताया—"भोलाराम नाम था उसका। जबलपुर शहरमें घमापुर मुहल्लेमें नालेके किनारे एक डेढ़ कमरेके टूटे-फूटे मकानमें वह परिवार समेत रहता था। उसकी एक स्त्री थी, दो लड़के और एक लड़की। उम्र लगभग साठ साल। सरकारी नौकर था। पाँच साल पहले रिटायर हो गया था। मकानका किराया उसने एक सालसे नहीं दिया, इसलिए मकान-मालिक उसे निकालना चाहता था। इतनेमें भोलारामने संसार ही छोड़ दिया। आज पाँचवाँ दिन है। बहुत सम्भव है कि अगर मकान-मालिक वास्तविक मकान-मालिक है, तो उसने भोलारामके मरते ही, उसके परिवारको निकाल दिया होगा। इसलिए आपको परिवारकी तलाशमें काफी घूमना पड़ेगा।"

माँ-बेटीके सम्मिलित क्रन्दनसे ही नारद भोलारामका मकान पहचान गये।

द्वारपर जाकर उन्होंने आवाज लगायी—"नारायण! नारायण!"

लड़कीने देखकर कहा—"आगे जाओ महाराज।"

नारदने कहा—"मुझे भिक्षा नहीं चाहिए; मुझे भोलारामके बारेमें कुछ पूछ-ताछ करनी है। अपनी मांको जरा बाहर भेजो, बेटी!"

भोलारामकी पत्नी बाहर आयी। नारदने कहा—"माता, भोलाराम-को क्या बीमारी थी।"

"क्या बताऊँ? गरीबीकी बीमारी थी। पांच साल हो गये, पेंशनपर बैठे। पर पेंशन अभीतक नहीं मिली। हर दस-पन्द्रह दिनमें एक दरख़्वास्त देते थे, पर वहांसे या तो जवाब आता ही नहीं था और आता, तो यही कि तुम्हारी पेंशनके मामलेपर विचार हो रहा है। इन पांच सालोंमें सब गहने बेचकर हम लोग खा गये। फिर बरतन बिके। अब कुछ नहीं बचा था। फाके होने लगे थे। चिन्तामें घुलते-घुलते और भूखे मरते-मरते उन्होंने दम तोड़ दी।"

नारदने कहा—"क्या करोगी मां? उनकी इतनी ही उम्र थी।"

"ऐसा तो मत कहो, महाराज! उम्र तो बहुत थी। पचास-साठ रुपया महीना पेंशन मिलती तो कुछ और काम कहीं करके गुजारा हो जाता। पर क्या करें? पांच साल नौकरीसे बैठे हो गये और अभीतक एक कौड़ी नहीं मिली।"

दुःखकी कथा सुननेकी फ़ुरसत नारदको थी नहीं। वे अपने मुद्देपर आये, "मां, यह तो बताओ कि यहां किसीसे उनका विशेष प्रेम था, जिसमें उनका जी लगा हो?"

पत्नी बोली—"लगाव तो महाराज, बाल-बच्चोंसे ही होता है।"

"नहीं, परिवारके बाहर भी हो सकता है। मेरा मतलब है, किसी स्त्री—"

स्त्रीने गुर्राकर नारदकी ओर देखा। बोली—"हर कुछ मत बको महाराज! तुम साधु हो, उचक्के नहीं हो। ज़िन्दगी-भर उन्होंने किसी दूसरी स्त्रीको आंख उठाकर नहीं देखा।"

नारद हँसकर बोले—"हाँ, तुम्हारा यह सोचना ठीक ही है। यही हर अच्छी गृहस्थीका आधार है। अच्छा, माता मैं चला।"

स्त्रीने कहा—"महाराज, आप तो साधु हैं, सिद्ध पुरुष हैं। कुछ ऐसा नहीं कर सकते कि उनकी रुकी हुई पेंशन मिल जाये। इन बच्चोंका पेट कुछ दिन भर जाये।"

नारदको दया आ गयी थी। वे कहने लगे—"साधुओंकी बात कौन मानता है? मेरा यहाँ कोई मठ तो है नहीं। फिर भी मैं सरकारी दफ्तर-में जाऊँगा और कोशिश करूँगा।"

वहाँसे चलकर नारद सरकारी दफ्तरमें पहुँचे। वहाँ पहले ही कमरेमें बैठे बाबूसे उन्होंने भोलारामके केसके बारेमें बातें की। उस बाबूने उन्हें ध्यानपूर्वक देखा और बोला—"भोलारामने दरख्वास्तें तो भेजी थी, पर उनपर वज़न नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ गयी होंगी।"

नारदने कहा—"भई, ये बहुत-से 'पेपर-वेट' तो रखे हैं। इन्हें क्यों नहीं रख दिया?"

बाबू हँसा—"आप साधु हैं, आपको दुनियादारी समझमें नहीं आती। दरख्वास्तें 'पेपर-वेट' से नहीं दबती। खैर, आप उस कमरेमें बैठे बाबूसे मिलिए।"

नारद उस बाबूके पास गये। उसने तीसरेके पास भेजा, तीसरेने चौथेके पास, चौथेने पाँचवेंके पास। जब नारद पचीस-तीस बाबुओं और अफसरोंके पास घूम आये तब एक चपरासीने कहा—"महाराज, आप क्यों इस झंझटमें पड़ गये। आप अगर साल-भर भी यहाँ चक्कर लगाते रहें, तो भी काम नहीं होगा। आप तो सीधे बड़े साहबसे मिलिए। उन्हें खुश कर लिया, तो अभी काम हो जायेगा।"

नारद बड़े साहबके कमरेमें पहुँचे। बाहर चपरासी ऊँघ रहा था, इसलिए उन्हें किसीने छेड़ा नहीं। बिना 'विजिटिंग कार्ड' के आया देख, साहब बड़े नाराज़ हुए। बोले—"इसे कोई मन्दिर-वन्दिर समझ लिया है

गया ? धड़धड़ाते चले आये ! चिट क्यों नहीं भेजी ?"

नारदने कहा—"कैसे भेजता ? चपरासी सो रहा है।"

"क्या काम है ?" साहबने रोबसे पूछा।

नारदने भोलारामका पेंशन केस बतलाया।

साहब बोले—"आप हैं बैरागी। दफ्तरोंके रीति-रिवाज नहीं जानते। असलमें भोलारामने गलती की। भई, यह भी एक मन्दिर है। यहाँ भी दान-पुण्य करना पड़ता है। आप भोलारामके आत्मीय मालूम होते हैं। भोलारामकी दरख्वास्तें उड़ रही हैं, उनपर वजन रखिए।"

नारदने सोचा कि फिर यहाँ वजनकी समस्या खड़ी हो गयी। साहब बोले—"भई, सरकारी पैसेका मामला है। पेंशनका केस बीसों दफ्तरोंमें जाता है। देर लग ही जाती है। बीसों बार एक ही बातको बीस जगह लिखना पड़ता है, तब पक्की होती है। जितनी पेन्शन मिलती है, उतनेकी स्टेशनरी लग जाती है। हाँ जल्दी भी हो सकती है, मगर—" साहब रुके।

नारदने कहा—"मगर क्या ?"

साहबने कुटिल मुसकानके साथ कहा—"मगर वजन चाहिए। आप समझे नहीं। जैसे आपकी यह सुन्दर वीणा है, इसका भी वज़न भोलारामकी दरख़्वास्तपर रखा जा सकता है। मेरी लड़की गाना-बजाना सीखती है। यह मैं उसे दे दूँगा। साधु-सन्तोंकी वीणासे तो और अच्छे स्वर निकलते हैं।"

नारद अपनी वीणा छिनते देख ज़रा घबड़ाये। पर फिर सँभलकर उन्होंने वीणा टेबिलपर रखकर कहा—"यह लीजिए। अब ज़रा जल्दी उसकी पेंशनका ऑर्डर निकाल दीजिए।"

साहबने प्रसन्नतासे उन्हें कुरसी दी, वीणाको एक कोनेमें रखा और घण्टी बजायी। चपरासी हाज़िर हुआ।

साहबने हुक्म दिया—"बड़े बाबूसे भोलारामके केसकी फ़ाइल

लाओ।"

थोड़ी देर बाद चपरासी भोलारामकी सौ-डेढ़ सौ दरख्वास्तोंसे भरी फाइल लेकर आया। उसमें पेंशनके कागजात भी थे। साहबने फाइल-परका नाम देखा और निश्चित करनेके लिए पूछा—"क्या नाम बताया साधुजी आपने?"

नारद समझे कि साहब कुछ ऊँचा सुनता है। इसलिए जोरसे बोले—"भोलाराम!"

सहसा फाइलमेंसे आवाज आयी—"कौन पुकार रहा है मुझे? पोस्टमैन है? क्या पेंशनका ऑर्डर आ गया?"

नारद चौंके। पर दूसरे ही क्षण बात समझ गये। बोले—"भोलाराम! तुम क्या भोलारामके जीव हो?"

"हाँ", आवाज आयी।

नारदने कहा—"मैं नारद हूँ। मैं तुम्हें लेने आया हूँ। चलो स्वर्गमें तुम्हारा इन्तजार हो रहा है।"

आवाज आयी—"मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशनकी दरख्वास्तोंमें अटका हूँ। यहीं मेरा मन लगा है। मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता।"

■ ■

एक फ़िल्म-कथा

यह रंजना और राकेशकी प्रेम-कहानी है।

रंजना बहुत अच्छी लड़की है और उसे गाना भी आता है।

राकेश भी बहुत अच्छा लड़का है। वह एक करोड़पतिका इकलौता बेटा है। वह थोड़ा आवारा है, क्योंकि उसे प्यार करना है और हमारे समाजमें कोई भी अच्छी स्त्री किसी शरीफ़ आदमीसे प्यार नहीं करती। राकेशको भी गाना आता है।

राकेशकी एक आदत है। वह उन स्थानोंके आसपास घूमता रहता है, जहाँ गुण्डे स्त्रियोंको तंग करते हैं। ज्यों ही किसी सुन्दरीको कोई गुण्डा छेड़ता है, राकेश उससे भिड़ जाता है और उसे पीटकर स्त्रीको उसके घर पहुँचा देता है।

एक दिन इसी तरह, गुण्डोंसे घिरी रंजनाको राकेश बचाता है और उसे घर पहुँचाने जाता है। रास्तेमें रंजना राकेशको सत्रह बार देखती है और राकेश रंजनाको इकतीस बार देखता है। तब रंजना उसके प्रति आभार प्रकट करती है और राकेश कहता है कि यह तो मेरा कर्त्तव्य था।

इतनी ही देरमें रंजना राकेशकी एक बुरी आदत छुड़वा देती है। राकेश चेन स्मोकर है। रंजना कहती है—"यह बुरी आदत है, इसे छोड़ दीजिए!"

राकेश फ़ौरन हाथकी सिगरेट फेंक देता है और सब जानते हैं कि उसने आज तक सिगरेट नहीं पी। उसका आवारापन अब सार्थक होने लगता है।

राकेश और रंजना अब पाँच गाने ऐसे याद करते हैं, जिन्हें डुएट या दुगाने कहते हैं। इन गानोंमें एक कड़ी नायक गाता है और दूसरी नायिका गाती है। ये गाने सीखकर वे अपने-अपने घरमें बैठे एक-एक कड़ी गाते रहते हैं। उनके हृदय मिल गये हैं, इसलिए ज्यों ही एक गाना आरम्भ करता है, दूसरा जान जाता है और वह आगे गाने लगता है।

अपने घरमें बैठकर, इस तरह पाँच गाने गाकर, वे एक बगीचेमें मिलते हैं। वहाँ वे गाने गाते हैं और लुका-छिपी खेलते हैं। वहाँ कोई आदमी इस समय नहीं आता, क्योंकि नगरपालिकाने जो समय प्रेमियोंके मिलनेके लिए निश्चित कर दिया है, उस समय नागरिकोंको आनेकी मनाही है। चारों कोनोंपर पुलिस तैनात रहती है। प्रेमी युगल पाँचवाँ गाना गाने ही वाला है कि कहींसे एकाएक चाँद निकल पड़ता है। दोनों चाँदको देखते हैं और चाँदनीके बारेमें एक गाना गाते हैं। गाना समाप्त होनेपर वे कसमें खाते हैं कि हम एक-दूसरेके हो गये। 'हम जीवन-भर साथ रहेंगे,' इस सम्बन्धसे एक और गाना गाकर वे अपने-अपने घर चले जाते हैं।

कुछ दिनों बाद रंजनापर दुःख टूट पड़ता है। उसकी माँकी मृत्यु हो जाती है। ज्यों ही माँ प्राण छोड़ती है, रंजना दूसरे कमरेमें जाकर माँकी मौतके बारेमें एक गाना गाती है, जो उसने पहलेसे इस अवसरके लिए तैयार कर रखा है।

रंजनाके पिता बाबू हरप्रसादको लड़कीके विवाहकी चिन्ता है। वह गरीब आदमी हैं, इसलिए उसके लिए अच्छा वर प्राप्त नहीं कर सकते।

इधर राकेशके पिता बेटेकी शादी एक रईसके घर करनेकी योजना बना रहे हैं। राकेश रंजनासे शादी करनेकी इच्छा प्रकट करता है, पर पिता कहते हैं कि गरीबके घर विवाह करनेसे उनकी इज्जत चली जायेगी। "यह मेरी इज्जतका सवाल है।" उनका कहना है।

अब यहाँ खलनायक प्रकट होता है। सुरेन्द्रसिंह एक पुराने जमींदार-

का इकलौता बेटा है। उसके पिताकी मृत्यु हो चुकी है और वह अपार सम्पत्तिका मालिक हो गया है। सुरेन्द्रसिंह बहुत बदमाश आदमी है, क्योंकि उसकी तलवार-जैसी मूँछें हैं। वह हमेशा सिगरेट पीता और सीटी बजाता रहता है। उसके पास एक बड़ा भयानक कुत्ता है। वह शराबी, जुआरी, चरित्रहीन, अत्याचारी सब-कुछ है। बाबू हरप्रसादपर उसका पन्द्रह हजार कर्ज है और उनका मकान उसके पास रेहन रखा हुआ है। वह जब-तब मकान बेदखल करानेकी धमकी देता रहता है। उसकी नजर रंजनापर है।

एक दिन राकेश रंजनाको मोटरमें घुमाने ले जाता है। रंजना मोटरकी सवारीके बारेमें एक गाना गाती है। बीचमें मोटर फ़ेल हो जाती है तो वह मोटर फ़ेल होनेके बारेमें भी एक गाना गाती है। अब उसके पास चौदह गाने हो गये हैं।

राकेश भी गाना गानेमें पीछे नहीं है। वह दो गाने आवारागर्दीके बारेमें गाता है। फिर एक दिन उसे सड़कके किनारे एक ग़रीब आदमी पड़ा दीखता है। उसे दया आ जाती है और वह वहीं रुककर ग़रीबकी दुर्दशाके बारेमें एक गाना गाता है, जिसमें वह सामनेकी अट्टालिकाकी ओर इशारा करके कहता है—"ऐ महलवालो! देखो तुम्हारे, सामने ही ग़रीब पड़ा है!" अब राकेशके पास भी चौदह गाने हो गये हैं।

राकेशका मन ग़रीबको देखकर बहुत दुःखी हो गया है, इसलिए वह रातको एक थियेटरमें जाकर नाच देखता है।

एक दिन रंजना एक वेराइटी शो देखने जाती है। वह तीन नाच देखती है। चौथे नाचके लिए राकेश ही नर्तकके वेशमें मंचपर आता है। ज्यों ही रंजनाकी दृष्टि उससे मिलती है, वह उसे पहचान लेती है। दोनों मुसकरा उठते हैं। राकेश एक अन्तरराष्ट्रीय नृत्य पेश करता है, जिसमें भरत-नाट्यम् और रॉक-एन-रोलका मिश्रण रहता है। रंजना यह देखकर बहुत प्रसन्न होती है कि राकेशको नाचना भी आता है। वह उसे

पहलेसे अधिक प्यार करने लगती है।

सुरेन्द्रसिंह अपने कुत्तेको साथ लेकर कई दिनसे शिकारपर गया था। वह लौट आता है। अब उसे रंजनाकी याद आती है और वह एक दिन बाबू हरप्रसादको बुलाता है। सुरेन्द्रसिंह बाबू हरप्रसादसे कर्ज पटानेके लिए कहता है। वह फिलहाल असमर्थता प्रकट करते हैं। वह उनसे मकान छोड़ देनेके लिए कहता है। बाबू हरप्रसाद अनुनय-विनय करते हैं, पर उस दुष्टका हृदय नहीं पसीजता। वह कहता है कि यदि वह रंजनाकी शादी उससे कर दें, तो वह सब कर्ज छोड़ देगा। बाबू हरप्रसाद बिना कुछ उत्तर दिये चले आते हैं।

बाबू हरप्रसादसे खाना नहीं खाया जाता। रंजना पिताकी चिन्ताका कारण समझ जाती है और कहती है कि मैं सुरेन्द्रसिंहसे शादी करनेके लिए तैयार हूँ। वह बलिदान करनेके लिए तैयार है। बलिदानकी परम्परा यहींसे आरम्भ होती है। रंजना इस निर्णयके बाद अपने कमरेमें जाती है और दरवाज़ा बन्द करके दुर्भाग्यका गाना गाती है। फिर वह राकेशकी तसवीर हाथमें लेकर उससे बातें करती है।

दूसरे दिन रंजना राकेशको एक चिट्ठी लिखकर अपने निर्णयकी सूचना दे देती है। लिखती है कि मुझे भूल जाओ।

राकेशके हृदयको बड़ा गहरा धक्का लगता है। वह एक निराशाका गाना गाता है। गानेके अन्तमें वीर-रस आता है, जब वह कहता है कि ऐ कोमल हृदयोंको कुचलनेवाली दुनिया! हम तुझमें आग लगा देंगे।

रंजनाकी शादीकी तिथि तय हो जाती है। रंजना और राकेश अपने-अपने घरमें बैठकर चार गाने गाते हैं, जिनमें कहा गया है कि अब तुम हमें भूल जाओ, अब हम सदाके लिए बिछुड़ गये।

राकेश घोर निराशामें जंगलकी ओर भाग जाता है, पर फिर उसे डर लगता है, इसलिए घर लौट आता है।

शादीकी तिथि आ जाती है। बाजे-गाजेके साथ सुरेन्द्रसिंह अपनी

बारात आता है। गलीमें उसे राकेश दीखता है। वह घोड़ेपर बैठे-बैठे ही सेहरेपरके फूलोंको जरा हटाकर, राकेशको मुँह चिढ़ाता है।

बारात मण्डपमें आ जाती है। वेदीके सामने रंजना और सुरेन्द्रसिंह बिठा दिये जाते हैं। पण्डित मन्त्र-पुस्तक खोल बैठे हैं और मन्त्र पढ़नेकी तैयारी करते हैं।

राकेशकी एक खास आदत है। जब किसी शादीमें शामिल होने जाता है, तब जेबमें पचीस-तीस हज़ारके नोट ले जाता है। जब वह देखता है कि लड़की किसी औरको प्यार करते हुए भी, क़र्ज़के दबावके कारण किसी औरसे शादी कर रही है, तो वह वहीं, मण्डपमें ही, लड़कीके बापका क़र्ज़ पटाकर लड़कीकी शादी उसके प्रेमीसे करा देता है।

आज वह पचास हज़ारके नोट लेकर आया है।

पण्डित राकेशके प्रकट होनेकी राह देख रहे हैं। वह मन्त्र पढ़नेमें इसीलिए विलम्ब कर रहे हैं। उन्हें मालूम है कि प्रेम करनेवाली कन्याओंके पिता, राकेशसे अपना क़र्ज़ पटवाकर लड़कीकी शादी उसके प्रेमीसे कर देते हैं।

पण्डित मन्त्रोच्चार करने ही वाले हैं कि सहसा भीड़मेंसे राकेश सामने आता है और बड़ी दबंग आवाज़में कहता है—"ठहरो! यह शादी नहीं हो सकती!"

एक सकता छा जाता है। सुरेन्द्रसिंह उठकर खड़ा हो जाता है और कड़ककर पूछता है—"तुम कौन होते हो बीचमें बोलनेवाले? शादी होकर रहेगी!"

यह साँस रोकनेका स्थल है। देखें क्या होता है?

सुरेन्द्रसिंह बाबू हरप्रसादसे कहता है कि यह सब क्या घुटाला है? बाबू हरप्रसादको मालूम है कि राकेश पचास हज़ारके नोट लेकर आया है। वह राकेशकी बातका समर्थन करते हैं।

तब सुरेन्द्रसिंह कहता है—"तो लाओ, मेरा क़र्ज़ पटाओ!"

राकेश तुरन्त पचास हज़ारके नोट उसके मुँहपर फेंककर कहता है—"ले, अपनी धनकी भूख शान्त कर!"

इसके बाद राकेश वहीं धनवानोंकी हृदयहीनतापर एक जोशीला भाषण देता है।

सुरेन्द्रसिंहका चेहरा क्रोधसे लाल हो रहा है। वह मुकुट ज़मीनपर फेंक देता है, पुष्पहार तोड़ फेंकता है और दूल्हेका बाना उतारकर कोट-की जेबमें नोटोंका बण्डल रख लेता है। न नोट गिनता है, न रसीद देता है। बाबू हरप्रसाद भी रसीद नहीं माँगते, क्योंकि पैसा उनकी जेब-से तो गया नहीं है।

सुरेन्द्रसिंह पाँव पटकता हुआ मण्डपसे बाहर चला जाता है। जाते-जाते कह जाता है—"याद रखना! मेरा नाम सुरेन्द्रसिंह है। मैं बदला लेकर रहूँगा।"

बाबू हरप्रसाद राकेशसे कहते हैं—"बेटा! तुमने मेरी इज़्ज़त बचा ली!"

राकेश सकोचपूर्वक कुछ अस्पष्ट उत्तर देता है, जिसका अर्थ है कि मैं तो इज़्ज़त बचाता ही रहता हूँ।

पण्डित कहते हैं—"विवाहका मुहूर्त निकला जा रहा है!"

यह सुनकर राकेश और रंजना वेदीपर बैठ जाते हैं और पण्डित मन्त्र पढ़ देते हैं।

राकेश और रंजना बहुत प्रसन्न है। राकेश अब दुनियाको आग लगानेका इरादा त्याग देता है। दोनों एक बड़े मकानमें रहते हैं और गाना गाते हैं। अब प्रत्येकके पास लगभग सत्तासी गाने हो चुके हैं।

पर ससारमें सुख और दुःखका जोड़ा है। एक दिन राकेश सख्त बीमार होता है। रजना डॉक्टरको नहीं बुलाती। वह भगवान्की मूर्तिके सामने पतिकी बीमारीके बारेमें एक गाना गाती है। थोड़ी देर बाद राकेश अच्छा हो जाता है।

गणेश और रंजना अब सुखपूर्वक रह सकते हैं, पर वे नहीं रहते, क्योंकि अभी फिल्म केवल दो घण्टेकी हुई है और दर्शक भूले न होंगे कि सुरेन्द्रसिंह जाते-जाते कह गया था, याद रखना ! मेरा नाम सुरेन्द्रसिंह है ! मैं बदला लिये बिना नहीं रहूँगा ।

अब एक रहस्य और खुलता है । सुरेन्द्रसिंहके पास रंजनाके कुछ पत्र हैं, जो किसी दूसरे प्रसंगके हैं, पर जिन्हें वह प्रेम-पत्र कहता है । वह रंजनाको धमकी भेजता है कि मैं ये प्रेम-पत्र गणेशको दिखा दूँगा ।

रंजना बहुत घबराती है और एकदम आत्महत्या करने चल देती है ।

आत्महत्या करनेकी जगह नदीका एक सुनसान घाट है । वहाँ बिलकुल सुनसान रहता है । रंजना घाटकी ओर बढ़ी जा रही है ।

भारतमें साधु बहुत हैं । इनसे समाजको बहुत लाभ है । इनका काम है, आत्महत्या करनेवाली स्त्रियोंको बचाना और बिछुड़े हुए प्रेमियोंको मिलाना । भारत-साधु-समाजकी व्यवस्थाके अनुसार सुन्दरियोंके आत्महत्या करनेके स्थानोंके पास एक-एक साधु छिपकर बैठा रहता है । वह चौबीसों घण्टे देखता रहता है कि कौन आत्महत्या करने जा रही है । बारह घण्टेमें उनकी ड्यूटी बदलती है ।

जहाँ रंजना डूबने जा रही है वहाँ भी एक साधु बैठा है । ज्यों ही वह रंजनाको देखता है, त्यों ही एक गाना गाता है, जिसमें वह सन्देश देता है कि, हे प्राणी ! संसार तो दुःखका स्थल ही है ! तू हिम्मत मत हार ! तेरे सुखके दिन आयेंगे ।····

रंजना ठिठककर साधुके सन्देशपर विचार करती है, पर उसे उसपर विश्वास नहीं होता और वह घाटकी ओर बढ़ जाती है ।

रंजना एक ऊँचे कगारपर खड़ी है । नीचे अथाह पानी है । हवा सायँ-सायँ कर रही है । घोर सस्पेन्सका क्षण है, यह ! क्या होगा ? क्या रंजना कूद पड़ेगी ?

इधर वह साधु भी धीमे पग पीछे-पीछे चला आया है । रंजनाको

नहीं मालूम, क्योंकि उसने पीछे देखा ही नहीं। साधु रंजनाके कूदनेकी राह देख रहा है। उसका नियम है कि जबतक सुन्दरी कूदने न लगे, वह उसे नहीं बचाता।

रंजना गिरने लगती है। साधु तुरन्त उसे पकड़ लेता है। रंजना मुड़ती है, साधु कहता है—"बेटी!" साधु उसे समझाता है और वह घर लौट जाती है। साधु कुटीमें लौट आता है और रिपोर्ट लिखकर भारत-साधु-समाजके केन्द्रीय कार्यालयको भेज देता है। रंजनापर साधुके उपदेशका असर पड़ता है। वह सत्यका सहारा लेती है। सुरेन्द्रसिंहकी चालबाजी राकेशको बता देती है।

राकेशको बहुत क्रोध आता है, वह सुरेन्द्रसिंहके बंगलेपर पहुँचता है। वहाँ देखता है कि सुरेन्द्रसिंह मरा पड़ा है। किसीने उसकी हत्या कर दी है।

राकेश घबराकर भागता है। रास्तेमें उसे पुलिस गिरफ्तार कर लेती है। रंजना बहुत दुःखी है। वह दुःख-भरे गाने गा-गाकर समय काटती है।

राकेशपर सुरेन्द्रसिंहकी हत्याका मुकदमा चलता है। अदालत भरी है। न्यायाधीश महोदय राकेशके बयान लेते हैं। फिर सरकारी वकील सिद्ध करता है कि हत्या राकेशने ही की है। राकेशका वकील इसका खण्डन करता है और सिद्ध करता है कि हत्या किसी औरने की थी, राकेश तो वहाँ बादमें पहुँचा। दर्शकोंमें बहुत सनसनी है। तीसरी बार यह सस्पेन्सकी स्थिति है। अब क्या होगा? क्या राकेशको फाँसी हो जायेगी?

न्यायाधीश फाँसीकी सजा सुनाने ही वाले हैं कि दर्शकोंमें-से एक स्त्री चिल्लाती है—"राकेश निर्दोष है। हत्या मैंने की है!" स्त्रीकी बलिदान-भावना देखकर सारे दर्शक मुग्ध हो जाते हैं।

न्यायाधीश उस स्त्रीको गिरफ्तार करवानेवाले ही हैं कि वहींसे

भागता-भागता एक आदमी आता है और अदालतमें घुसकर चिल्लाता है—"भाई भाई! इन्साफ मैं हूँ। मुन्द्रिमिरकी हत्या मैंने की है।...."

सब सकतेमें हैं। सब सुनसान हैं। उनमें आदमियोंकी बलिदान करनेके लिए, जनता देवताका भाग्यनिर्णय हुजूम भर आता है और वे सबकी ओर देखते हैं। उनका निर्णय है कि मुन्द्रमिरने आत्महत्या की है।

सब प्रसन्न हैं। पंजाबी और बंगाली अब मुक्त होकर चल जाते हैं, क्योंकि किसी तीन आदमियोंकी जान बची है।

एक तृप्त आदमीकी कहानी

परिचय :

असल नाम—नन्दलाल शर्मा।

लड़कोंके द्वारा बनाया गया और प्रचलित किया गया नाम—एन्० एल्० मास्टर। पेशा—स्कूल मास्टरी। वेतन ९०) रुपया मासिक, ऊपरी आमदनी १५ रुपया (ट्यूशनसे)। उम्र ३५ के लगभग। शरीर स्वस्थ। रूप—सेकेण्ड क्लास। परिवार—माँ बीवी तीन बच्चे। आवास—दो कमरे, एक परछी, जिसमें एक कोनेपर रसोईघर और उसके सामने दूसरे कोनेपर पाखाना। (भोजन करते वक्त याद रहे कि अन्नका हश्र क्या होनेवाला है। जैसे ज्ञानीको घोर भोगके बीच भी अन्त याद रहता है)। कमरेमें एक टेबिल (बना टेबिलक्लाथ, पर स्याहीके धब्बे और ब्लेडकी खुदाईसे अलंकृत), एक आराम कुरसी (आरामकी स्थिति नामके बाहर कहीं नहीं), दो बेंतकी कुरसियाँ, एक लोहेकी टूटी कुरसी (जो बैठनेवाले-के कपड़े फाड़नेके काम आती है), दीवारपर चीरहरण करते हुए कृष्णकी तसवीर, दूसरी तसवीर हनुमान्‌की—सीना फाड़कर अन्तःकरणमें अंकित 'राम' दिखाते हुए, एक चित्र गान्धीजीका (अखबारमेंसे फाड़कर मढ़ाया हुआ।)

बजट :

वेतन—९० रुपया, ऊपरी आमदनी १५ रुपये, कुल १०५ रुपया, मकान किराया—३० रुपया। शेष—७५ रुपया।

पाँच [illegible]

और [illegible] पाया जाता है, पर [illegible] एल० एल० मास्टर पाये जाते हैं।

दिनचर्या :

प्रातःकाल [illegible] एल० एल० मास्टर सात बजे जाग उठे। बड़ा लड़का उन्हींके पास सोता है।—(मास्टरोंकी यही बाल-व्यवस्था [illegible] होती है, पर [illegible] मालूम होगा!) लड़का [illegible] [illegible] पकड़कर उसे और [illegible] लिया था। एल० एल० मास्टरने उसे फटकार दिया और उन्होंने कहा—"मैंने कहा [illegible] जरा ठोंक देना।" उन्होंने सिर हिला दिया। मास्टर मुँह-हाथ धोने गये। कच्चा-पिचका कोयलेसे दाँत घिसे और कुल्ले किये (दुर्भाग्य और बाजार मंजनसे दाँत खराब हो जाते हैं!) मास्टर कुरसीपर बैठ गये, मास्टरनीने चायका कप लाकर रख दिया—(कपमें दो जगह कट गयी है, एक निशान बना है और एक किनार पान जो [illegible] निकल गया!) मास्टरने पान बनाये, सुपारी काटी, तमाखू मिली और फाँक ली। मास्टरने कुरता-पायजामा शरीरपर डाला और तमाखू चबाते तथा थूकते दूकानपर चल दिये। रास्तेमें एक पानकी दूकानपर रुक गये। पानवाला उन्हें कभी-कभी पान खिला देता है। (उसका लड़का पढ़ता है और वह परीक्षाके समय मास्टरसे कह देता है पंडज्जी, जरा लड़केको देख लेना, और मास्टर उसे 'देख लेते' हैं। इसी देख लेनेके कारण वह देखते-देखते ही पाँचवींसे नवीं कक्षामें पहुँच गया।) मास्टर पानवालेका अखबार उठाकर पढ़ने लगे। वे इसी तरह अखबार पढ़ लेते हैं। अगर कोई पढ़ रहा हो, तो उसके कन्धेके ऊपर गरदन डालकर पढ़ लेते हैं। अखबार नहीं मिला तो, कई दिन नहीं पढ़ते। दूकानपर खड़े एक आदमीने कहा—"अमेरिका और

रम हमेशा क्यों झगड़ते रहते हैं ?" मास्टर बोले—"झगड़ने दो, अपना क्या लेते हैं।" दूसरा बिना किसीको लक्ष्य किये बोला—"कश्मीरके मामलेमें क्या हो रहा है ?" मास्टरने कहा—"होता होगा। बड़े-बड़े लोग तो लगे हैं।" तभी पानवालेने कहा—"बम्बईमें बड़ा गज़ब हो गया। मिलके मज़दूरोंने हड़ताल कर दी। पुलिसकी गोलीमें ग्यारह मज़दूर मर गये।" मास्टरने कुल इतना कहा—"देखो भला मौत कहाँ ले गयी।" और आगे बढ़ गये।

मास्टर ट्यूशन पढ़ाकर घर लौट आये। दाढ़ी बनायी, स्नान किया और बनियानमें साबुन लगाया—तीनों काम एक ही साबुनसे। भोजन करने बैठे—आस-पास बच्चे। दाल-भात ज्यादा खाते हैं मास्टर। चावल आसानीसे पच जाता है। कभी साग भी बन जाता है। मास्टरने कपड़े पहने। कपड़े कम हैं इसलिए मास्टर इतवारको खुद धोकर लोहा कर लेते हैं। कोट आदमीकी इज़्ज़त भी बचाता है। और कमीज़की भी—फटी क़मीज़ कोटके नीचे पहनकर मास्टर स्कूल चल दिये।

सड़कके बाँयें किनारेकी पटरीमें सीधे चले जा रहे हैं—नीचे देखते, पास-पास कदम रखते। रास्तेमें लड़के एकके बाद एक नमस्ते करते निकलते हैं। और मास्टर सिर हिलाकर जवाब देते हैं। मास्टरके मनने सिर उठाया। सोचा—"मैं चुनावमें खड़ा हो जाऊँ ?" उसी क्षण दूसरा खयाल आया, पर ये नमस्ते करनेवाले लड़के मतदाता थोड़े ही हैं। और तब उन्होंने मन-ही-मन अपनी उम्मीदवारी निस्संकोच वापस ले ली।

मास्टर ठीक ग्यारह बजे स्कूल पहुँचे, रजिस्टरमें हाज़िरी लगायी, बड़ोंसे खुद नमस्ते किया, छोटोंके हाथ जोड़नेकी राह देखते रहे। सामूहिक प्रार्थनामें एकाग्र मनसे खड़े हुए, फिर कक्षामें गये। एकके बाद एक घण्टियाँ बजती रहीं और एन० एल० मास्टर इस कमरेमें-से उस कमरेमें जाते रहे। वे मेहनतसे पढ़ाते हैं। न खुश होते हैं, न नाराज़। न हँसते हैं, न डाँटते हैं। न प्रेम करते, न घृणा। न हेडमास्टरकी किसी बातमें यक़ा

करते हैं, न आगेसे छात्रोंको मजाक देते हैं।

ठीक समयपर पढ़ाते हैं, ठीक समयपर कोर्स पूरा कर देते हैं। कापियाँ ठीक समयपर जाँचते हैं, हिसाब ठीक बनाते हैं। हर आदेशको ठीक समयपर पूरा कर देते हैं।

एम्० एस्० मास्टर अच्छे शिक्षक हैं, उनमें सब गुण हैं।

बीचकी छुट्टीमें मास्टरने एक कप चाय पीकर डकार ली और तम्बाकू फाँकी। घण्टी बजी और फिर बजी इस तरह—इस कमरेसे उस कमरेमें और अँगरेजी, गणित, भूगोल, विज्ञान,····

शामको मास्टर घर लौटे और चाय पीकर दो पुत्रोंको साथ लेकर तीन काम एक साथ करने निकल पड़े—घूमने, हनुमान्‌जीके दर्शन करने और साग-भाजी खरीदने। वे रोज फुहारेके पासवाले हनुमान्‌जीके दर्शन करते हैं, (कोतवालीके पासके हनुमान्‌को वे अपना हनुमान् नहीं मानते।) साग-भाजी भी हमेशा एक ही दुकानसे खरीदते हैं। अक्सर कुम्हड़ा और तुरई। सस्ते होते हैं। नहीं, मास्टरका खयाल है आलू कब्ज करते हैं। और गोभीमें इल्लियाँ होती हैं। अँधेरा होते वे घर लौट आते हैं।

जबतक पत्नी खाना बनाती है। मास्टर बच्चोंको खिलाते हैं। या पढ़ाते हैं। उद्देश्य यह है कि वे ऊधम न करें। कभी कुछ साथी शिक्षक आ गये, तो वह दो घड़ी गप्पें भी हाँक लेते हैं। छोटी-मोटी बातपर सब खूब हँसते हैं, क्योंकि शामका हँसना स्वास्थ्यके लिए लाभदायक होता है। भोजन करके मास्टरने बच्चोंको सुला दिया और बालटियाँ लेकर सामने सड़कपर-के नलसे पानी लाकर घड़ोंमें भरने लगे। घरका नल रोता-रोता चलता है, इसलिए सुबहके लिए पानी रातको ही सड़कके नलसे भर लेते हैं। (मास्टरनी कैसे पानी भरने जायें, कुलीन घरानेकी जो हैं)।

काम-काज समाप्त कर मास्टरनी 'हे राम' के साथ थकान-भरी साँस

लेकर छोटे बच्चेके पास आकर लेट जाती है। मास्टर उसे एकटक निहा-रते है, श्रमकी हँफनीमें चढ़ते-उतरते उसके वक्षको देखते है। उनके नेत्रोंमें असीम प्यार है। वे कहते है, 'तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो' और सो जाते हैं।

हर दिन ऐसा ही उगता है, ऐसा ही चढ़ता है, ऐसा ही डूबता है। मौसम बदलते रहते हैं। मास्टरकी दिनचर्यामें कोई हेर-फेर नही होता।

वही क्रम रोज़'''उठना। कोयलेका मंजन। फीकी चाय। पानकी दूकानका अखबार। टयूशन। कोटके नीचे फटी कमीज। सड़कके किनारे-किनारे स्कूल यात्रा। नमस्कार। अँगरेजी, गणित, इतिहास, विज्ञान। हनुमान्‌जीके दर्शन। सड़कके नलमें पानी। 'तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो।'

फुटकर नोट्स :

एन्० एल्० मास्टर सिनेमा भी देख लेते हैं, गाना भी सुन लेते हैं, ताश भी खेल लेते हैं। कभी भंग भी छान लेते हैं। किसीसे ज्यादा हेल-मेल नही रखते। ज्यादा मिठासमें कीड़े पड़ते हैं। वे किसीसे नही लड़ते। किसीकी दो बातें सुन ली तो क्या बिगड़ता है।

झंझटोंसे दूर रहते है। एक मित्रने, एक दिन कहा—"मास्टर एम्० ए० कर डालो।" वे बोले—"क्या करना है इतना ही बहुत है।" हर साल उनके वेतनमें ३ रुपयेकी वृद्धि होती है। फ़रवरीकी पहली तारीख-को जब वे बढ़ा हुआ वेतन पाते हैं। तो उन तीन रुपयोंकी मिठाई ले जाते हैं और पत्नीको देकर अमित सन्तोषसे कहते है—"लो, बच्चोंको खिला दो। 'तीन रुपये तरक्की हो गयी।"

पिछले वर्ष वेतन और नौकरीकी शर्तोंमें सुधारके लिए शिक्षकोंने बड़ा आन्दोलन किया, जब कुछ लोग एन्० एल्० मास्टरके पास आये और उन्हें शिक्षक संघका सदस्य बननेको कहा, तो वे बोले—"भैया, हमें मत झंझटमें डालो। आप ही लोग करो।" उनके बिना भी संगठन

सी हुआ ही और एक दिन हड़ताल हो गयी। उनके अनेक साथी फाटक-पर खड़े थे। एन० एल० मास्टर जब ठीक वक्तपर फाटकपर पहुँचे तो वे हाथ जोड़कर बोले—"मास्टर साहब, हमारे पेटमें लात मत मारिए" मगर एन० एल० मास्टर बिना किसीसे कुछ कहे सुने भीतर चले गये। वह 'हंगामे'में नहीं पड़ते।

उन्होंने लिखा भी है। एक बार एक स्थानीय दैनिकमें उन्होंने पत्र छपाया था जिसमें नागरिकोंसे अपील की थी कि सार्वजनिक समारोहोंमें राष्ट्रगीतके समय सबको अनिवार्य रूपसे खड़े हो जाना चाहिए। उसकी कटिंग उन्होंने हिफाजतसे रख छोड़ी है। सन्तोष है कि उनके नामसे कुछ छपा भी है।

दाम्पत्य जीवन सन्तोषमय है। पति-पत्नीमें अच्छी पटती है। एक बार पड़ोसिन विधवा भाभीसे मास्टरकी घनिष्ठता बढ़ गयी थी। खिड़कीसे देखा-देखी भी होती थी, कभी-कभी वह उनके यहाँ जाकर बैठते भी थे। एक दिन पत्नीने भाभीका हाथ अपने हाथमें लिये हुए, उनका भविष्य बतलाते देख लिया। रातको उसने मास्टरसे कहा—"जरा सोचो तो। लोग क्या कहेंगे।" मास्टरके मनमें बात गूँजती रही—"लोग क्या कहेंगे"। उन्होंने सोचा—"ठीक तो है। लोग क्या कहेंगे।" दूसरे दिनसे उन्होंने भाभीकी तरफ़ देखा भी नहीं। एक दिन अनायास आमना-सामना हो जानेपर भाभी डबडबायी आँखोंसे बोली—"क्यों लाला, ऐसा ही नेह निभाया जाता है?" मास्टरने कहा—"जरा सोचो तो। लोग क्या कहेंगे।" कुछ दिनों बाद किसीने उनसे कहा कि आजकल बैंकका मैनेजर भाभीको मोटरमें घुमाने ले जाता है। मास्टरने सहज ही जवाब दिया—"ठीक है। समरथको नहिं दोष गुसाईं।"

एन० एल० मास्टरकी जिन्दगीके कुछ नोट्स हैं ये : वह भूखे नहीं रहते, निर्वस्त्र नहीं रहते। भरा-पूरा परिवार है, अच्छी पत्नी है। न किसीसे उधार लेते न किसीको उधार देते हैं। शान्त प्रकृति हैं। उन्हें

कोई कमी महसूस नहीं होती, कोई अभाव नहीं खटकता। उन्हें कोई चाह नहीं है।

वर्षके बाद वर्ष ऐसे ही निकलते जा रहे हैं। प्रकृति बदलती है, मास्टरकी जिन्दगीमें एक ही मौसम है।

लोग कहते हैं—"एन० एल० मास्टर पूर्ण तृप्त आदमी है।"

मेरा मित्र तो उनपर मुग्ध है। कहता है—"ऐसा आदमी दुर्लभ है। दुनियामें निराशा, विकलता, पिपासा, और कुण्ठाके पुतले ही देखनेमें आते हैं। तृप्त आदमी आउट-ऑफ़ स्टाक होता जाता है। एन० एल० मास्टर झरना है, रेगिस्तानका। उसे देख लेनेसे ऐसा लगता है कि जैसे तीर्थस्नान कर लिया हो। वह पूर्ण तृप्त आदमी है। उसे कोई भूख नहीं है।" और मुझे याद आता है कि पिछले साल जब मैं बीमार पड़ा था, तब मेरी भी भूख मर गयी थी, अच्छेसे अच्छे पकवान मेरे सामने रखे रहते थे और मैं मुँह फेर लेता था।

■

हनुमानकी रेल-यात्रा

रामचन्द्रके पिता जमींदार थे। वे अयोध्यामें रहते थे। जमींदारी खत्म होनेपर वे जमीन और जंगल बेचकर पैसा लेकर दिल्ली बस गये। उन्होंने एक यज्ञ-कम्पनी खोली जिसमें २५० ब्राह्मण और २५ ऋषि काम करते थे, जो रामलीलावाली दाढ़ी-मूछें लगाते थे। यह कम्पनी आर्डरपर भारतमें कहीं भी यज्ञ करती थी। यज्ञोंसे देश समृद्ध होता है, यह मानकर सरकार कम्पनीको अनुदान देती थी।

रामचन्द्रकी शिक्षा-दीक्षा दिल्लीमें हुई। जब वे एम० ए० हुए तब उनके पिता और सौतेली मातामें विवाद छिड़ा कि बेटेका भविष्य कैसा हो। पिताका मत था कि उसे यज्ञ-कम्पनीका डाइरेक्टर बना दिया जाये। सौतेली माताका हठ था कि उसे दिल्लीसे दूर कहीं अच्छी नौकरी दिलवा दी जाये और यज्ञ-कम्पनीका डाइरेक्टर उनका सगा बेटा बने। हठके सामने मतकी नहीं चली। रामचन्द्रके पिताने एक मन्त्रीसे जो यज्ञके प्रतापसे ही मन्त्री हुए थे, रामचन्द्रको नौकरी देनेके लिए कहा। उन्होंने रामचन्द्रको अफ़सर बनाकर नागपुर भेज दिया।

सौतेली माँने रामचन्द्रकी शादी करके बहूको कुछ दिनके लिए अपने पास रख लिया। नियम है कि जो माँ बेटेको जितना प्यार करती है; बहूको उतना ही दुःख देती है। रामचन्द्रको मद्रासमें प्रियाके पत्र मिलते कि मुझे जल्दी बुला लो, वरना मेरी लाश पाओगे। सासजी पूरी राक्षसी हैं।

एक दिन रामचन्द्रने अपने सेवकोंको बुलाकर कहा—"तुम्हारी

स्वामिनी जानकी दिल्लीमें बड़े संकटमें हैं। एक तो वह विरहकी आगमें जल रही हैं; दूसरे उसकी सास उसपर अत्याचार करती हैं। तुममें-से कोई जाकर उसे ले आये।"

यह सुनकर सेवकोंने सिर नीचे कर लिये और वे चुप बैठे रहे।

रामचन्द्रने कहा—"तुम बोलते क्यों नहीं? उदास क्यों हो गये? मालकिनके आनेकी खबरसे घबड़ाओ मत। जानकी बहुत अच्छे स्वभावकी है। नये आँकड़ोंके अनुसार अफ़सरके घरमें नौकरके टिकनेकी औसत अवधि एक महीना है। पर मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जानकी तुम्हें ५-६ महीने निभा लेगी। उठो और उसे सादर लिवा लाओ।"

एक सयाना सेवक हाथ जोड़कर बोला—"मालिक, हमें मालकिनसे डर नहीं है। हम दूसरी बातसे चिन्तित हैं। बात यह है कि हम मालकिनको दिल्लीसे नहीं ला सकेंगे। रेलगाड़ियोंमें इतनी भीड़ होती है कि हम कुचलकर या दम घुटकर मर जायेंगे। हम आपके कामके लिए जान दे सकते हैं पर जान देनेसे भी माता जानकी दिल्लीसे नहीं आ सकतीं। आप तो जानते ही हैं कि दिल्लीमें आदमी गाड़ीमें बैठते हैं और मद्रासमें लाशें उतरती हैं।"

यह सुनकर रामचन्द्र चिन्तित हो गये। बोले—"तुम्हारा कहना ठीक है। गाड़ियोंमें सचमुच बहुत भीड़ होती है। और क्यों न हो? जितने डब्बे बनते हैं, उनसे कई गुने बैठनेवाले पैदा हो जाते हैं। पर यह समस्या जल्दी हल हो जायेगी। सरकार कानून बना रही है कि जो आदमी पाँचसे ऊपर बच्चे पैदा करे, वह रेलगाड़ीका एक डब्बा बनाकर दे। पर तुम लोगोंमें एक भी ऐसा वीर नहीं है, जो दिल्ली जाकर मेरी प्रियाको ले आये?"

सयानेने कहा—"मालिक, दिल्ली तो बहुत दूर है। हममें-से कितनों ही की बीवियाँ तीन-चार स्टेशन आगे पड़ी हैं और हम उन्हें नहीं ला सकते। हाँ, हममें एक ही ऐसा वीर है, जो आपका काम कर

सकता है 'यह हनुमान् है।'"

सुनकर रामचन्द्रजीने पास ही बैठे हुए सबसे बड़े नौकरके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—"हनुमान् पवनसुत, तुम क्यों चुप हो? तुम तो अतुलित बलशाली हो। तुमने बड़े-बड़े पराक्रम किये हैं। तुम क्यों 'बोलो अधिक' 'कम करो अधिक'के लिखित मनोहर लिपिमें दासमें बैठते हो। उठो और अपना काम करो।"

रामजीके वचनोंसे हनुमान्को अपना बल स्मरण हो आया। दूसरों की सीखियोंको मनामें लिखकर रखना, उसकी पुरानी आदत थी। इसके लिए वह कभी खोज-पूछ करता था; समझ तक जाता था। उसने अपनी दबाकर आँखें जम्हाई ली और उठ खड़ा हुआ। हाथ जोड़कर सिर नवाकर उसने कहा—"मालिक, आपके हुक्मसे मैं कुछ भी कर सकता हूँ। आप प्रतापी अफसर हैं, जिनका हाथ बड़ासे बड़ा आफिसर नहीं पकड़ सकता। आप कहें तो मैं ग्रैण्ड ट्रंक एक्सप्रेसको उलट दूँ; 'चित्तरंजन'के इंजिनको पचा जाऊँ। आपकी कृपाके बलसे मैं दिल्ली जानेवाली गाड़ीको ठेलकर मद्रास ले जाऊँ; पुल तोड़कर रेलगाड़ीको चाहे जहाँ रोक दूँ!"

हनुमान्के वचन सुनकर रामचन्द्र प्रसन्न हुए। वे बोले—"तुम्हारी बातसे मैं सन्तुष्ट हुआ। मैं तुम्हारी तनख्वाह बढ़ा दूँगा। तुम आज ही ग्रैण्ड ट्रंक एक्सप्रेससे चले जाओ।"

रामचन्द्रने पिताके नाम एक चिट्ठी लिखकर दी जिसे हनुमान्ने तमाखूके बटुएमें रख लिया। उसने कहा—"मालिक, दो अच्छर मालकिनके लिए भी लिख देते।" रामचन्द्रने कहा—"लिखनेसे क्या होगा? चिट्ठी उसके पास नहीं पहुँचेगी। पिताजीको मेरे प्रेम-पत्र पढ़नेकी पुरानी आदत है। तुम तो जानकीको मेरा सन्देशा जबानी दे देना। कहना कि साहबने कहा है कि 'हे प्रिया, मैं तेरे विरहमें कितना दुबला हो गया हूँ कि मैंने कल ही बेल्टमें कीलेसे एक नया छेद किया है। मेरी हालत तू इसीसे

समझ जा।"

हनुमान्‌ने बिस्तर काँखमें दबाया और स्टेशन पहुँच गया। टिकिटकी खिड़कीके सामने लम्बी कतार लगी थी। हनुमान् खिड़कीके पासके दो-तीन आदमियोंको ढकेलकर वहाँ खड़ा हो गया। मुसाफ़िरोंने चिल्लाना शुरू किया—"आगे क्यों घुसता है!" धक्का-मुक्की होने लगी। हनुमान्‌ने ध्यान ही नहीं दिया। पर इसी समय पुलिसमैन आ गया। उसे देखते ही हनुमान्‌का बल क्षीण हो गया। बचपनमें एक जुआड़ीके कहनेसे उसने एक पुलिसमैनको चबा लिया था, इसलिए उसे शाप मिला था कि पुलिसमैनको देखते ही तेरा बल क्षीण हो जायगा। पुलिसमैनने उसे हाथ पकड़कर घसीटा और कतारमें सबसे पीछे खड़ा कर दिया।

वह वहाँ खड़ा-खड़ा खिसकने लगा। उसे लगा कि मैं मांसका एक लौंदा हूँ जो धीरे-धीरे लुढ़क रहा है। उसका होश जाता रहा।

अचानक उसके कानोंमें शब्द पड़े—"कहाँका टिकिट चाहिए?" उसने आँखें चलाकर टिकिटघरकी दीवारपर देखा। वहाँ २३ तारीखकी तख्ती लगी थी। टिकिटबाबूसे पूछा—"आज क्या २३ तारीख है?" टिकिटबाबूने सिर हिलाया। हनुमान्‌ने कहा—"पर मैं तो २१ तारीखको कतारमें खड़ा हुआ था! मुझे २१ तारीखकी गाड़ीका एक टिकिट दिल्लीका चाहिए।"

बाबूने कहा—"तुम क्या पागल हो? २१ तारीख तो निकल गयी।"

हनुमान् बोला—"पर ग़लती मेरी है कि तुम्हारी? मैं तो २१की गाड़ीमें ही जा रहा था। २३ हो गयी, तो मैं क्या करूँ?"

पीछेसे धक्के लगने लगे। पुलिसमैन फिर दिख गया। हनुमान्‌ने झट टिकिट ले लिया और प्लेटफ़ॉर्मपर पहुँच गया।

गाड़ी आयी। चढ़ने और उतरनेवालोंमें लड़ाई होने लगी। चढ़नेवाले एक-दूसरेको कुचलकर चढ़नेकी कोशिश करने लगे। हनुमान् उनका

और भीतरसे किसी तरह निकलकर डब्बेमें घुसने लगा। उसे उतरनेवालों-का धक्का लगा और वह दूर जा गिरा। वह उठा और चढ़नेवालोंको उठा-उठाकर फेंकने लगा। डब्बेके पास पहुँचा ही था कि सिपाहीने पीछेसे टाँग खींच दी और वह औंधे मुँह गिर पड़ा।

हनुमान्‌ने दूसरे डब्बेमें कोशिश की, फिर तीसरेमें, चौथेमें। वह कहीं भी नहीं घुस सका।

वह प्लेटफार्मपर खड़ा रहा था। बोला, 'धिक्कार है मेरे बलको! मैं गाड़ीमें नहीं बैठ सकता। हाय, मैं मालिकका इतना-सा काम नहीं कर सका। माता जानकी क्या कभी भी पतिके पास नहीं आ सकेंगी?"

वह स्टेशनसे निकला और लाइनके साथ-साथ आगे बढ़ने लगा।

थोड़ी देर बाद रामचन्द्र रेलवे लाइनके पाससे सड़कसे घूमते हुए निकले। उन्होंने देखा कि ट्रेन रुक गयी है और सीटी दे रही है। ऊपर चढ़े तो देखा कि हनुमान् पटरीपर लेटे हैं। उन्होंने उसे जल्दी उठाया और कहा—"तुम अभी यहीं हो! दिल्ली नहीं गये! क्या किसीने जेब काट लिया? इस तरह पटरीपर क्यों लेटे हो?"

हनुमान्‌की आँखोंसे आँसू टपकने लगे। कहने लगा—"मालिक, मुझे मर जाने दीजिए। मैं गाड़ीमें नहीं बैठ सका। मेरे बलको धिक्कार है। जिस गाड़ीने मुझे ऊपर नहीं बिठाया, उसके मैं नीचे बैठकर प्राण त्याग दूँगा।"

मुण्डन

किसी देशकी संसदमें एक दिन बड़ी हलचल मची। हलचलका कारण कोई राजनैतिक समस्या नहीं थी, बल्कि यह था कि एक मन्त्रीका अचानक मुण्डन हो गया था। कलतक उनके सिरपर लम्बे घुँघराले बाल थे, मगर रातमें उनका अचानक मुण्डन हो गया था।

सदस्योंमें कानाफूसी हो रही थी कि इन्हें क्या हो गया है। अटकलें लगने लगी। किसीने कहा—"शायद सिरमें जूँ हो गयी हों।" दूसरेने कहा—"शायद दिमागमें विचार भरनेके लिए बालोंका परदा अलग कर दिया हो।" किसी औरने कहा—"शायद इनके परिवारमें किसीकी मौत हो गयी हो।" पर वे पहलेकी तरह प्रसन्न लग रहे थे।

आखिर एक सदस्यने पूछा—"अध्यक्ष महोदय! क्या मैं जान सकता हूँ कि माननीय मन्त्री महोदयके परिवारमें क्या किसीकी मृत्यु हो गयी है?"

मन्त्रीने जवाब दिया—"नहीं।"

सदस्योंने अटकल लगायी कि कहीं उन लोगोंने ही तो मन्त्रीका मुण्डन नहीं कर दिया, जिनके खिलाफ़ वे बिल पेश करनेका इरादा कर रहे थे।

एक सदस्यने पूछा—"अध्यक्ष महोदय! क्या माननीय मन्त्रीको मालूम है कि उनका मुण्डन हो गया है? यदि हाँ, तो क्या वे बतायेंगे कि उनका मुण्डन किसने कर दिया है?" मन्त्रीने संजीदगीसे जवाब दिया—"मैं नहीं कह सकता कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं!"

कई सदस्य फिर बोले—"हुआ है! सबको दिख रहा है।"

मन्त्रीने कहा—"दिखनेसे कुछ नहीं होता? सरकारको दिखना चाहिए। सरकार इस बातकी जाँच करेगी कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं।"

एक सदस्यने कहा—"इसकी जाँच अभी हो सकती है। मन्त्री महोदय अपना हाथ सिरपर फेरकर देख लें।"

मन्त्रीने जवाब दिया—"मैं अपना हाथ सिरपर फेरकर हर्गिज नहीं देखूँगा। सरकार इस मामलेमें जल्दबाजी नहीं करती। मगर मैं वादा करता हूँ कि मेरी सरकार इस बारेमें विस्तृत जाँच करवाकर सारे तथ्य सदनके सामने रख देगी।"

सदस्य चिल्लाये—"इसकी जाँचकी क्या जरूरत है? सिर आपका है और हाथ भी आपका है। अपने ही हाथको अपने सिरपर फेरनेमें मन्त्री महोदयको क्या आपत्ति है।"

मन्त्री बोले—"मैं सदस्योंसे सहमत हूँ कि सिर मेरा है और हाथ भी मेरे हैं। मगर हमारे हाथ परम्पराओं और नीतियोंसे बँधे हैं। मैं अपने सिरपर हाथ फेरनेके लिए स्वतन्त्र नहीं हूँ। सरकारकी एक नियमित कार्यप्रणाली होती है। विरोधी सदस्योंके दबावमें आकर मैं उस प्रणालीको भंग नहीं कर सकता। मैं सदनमें इस सम्बन्धमें एक वक्तव्य दूँगा।"

शामको मन्त्री महोदयने सदनमें वक्तव्य दिया—

"अध्यक्ष महोदय! सदनमें यह प्रश्न उठाया गया कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं। यदि हुआ है, तो वह किसने किया है। ये प्रश्न बहुत जटिल हैं। और इनपर सरकार जल्दबाजीमें कोई निर्णय नहीं दे सकती। मैं नहीं कह सकता कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं। जबतक पूरी जाँच न हो जाये, सरकार इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कह सकती। हमारी सरकार तीन व्यक्तियोंकी एक जाँच समिति नियुक्त करती है, जो इस

बालकी जाँच करेगी। जाँच समितिकी रिपोर्ट मैं सदनमें पेश करूँगा।"

सदस्योंने कहा—"यह मामला कुतुबमीनारका नहीं जो सदियों जाँचके लिए खड़ी रहेगी। यह आपके बालोंका मामला है, जो बढ़ते और घटते रहते हैं। इसका निर्णय तुरन्त होना चाहिए।"

मन्त्रीने जवाब दिया—"कुतुबमीनारसे हमारे बालोंकी तुलना करके उनका अपमान करनेका अधिकार सदस्योंको नहीं है। जहाँतक मूल समस्याका सम्बन्ध है, सरकार जाँचके पहले कुछ नहीं कह सकती।"

जाँच समिति बालोंकी जाँच करती रही। इधर मन्त्रीके सिरपर बाल बढ़ते रहे।

एक दिन मन्त्रीने जाँच समितिकी रिपोर्ट सदनके सामने रख दी।

जाँच समितिका निर्णय था कि मन्त्रीका मुण्डन नहीं हुआ।

सत्ताधारी दलके सदस्योंने इसका स्वागत हर्षध्वनिसे किया।

सदनके दूसरे भागसे 'शर्म-शर्म',की आवाजें उठीं। एतराज उठे—"यह एकदम झूठ है। मन्त्रीका मुण्डन हुआ था।"

मन्त्री मुसकराते हुए उठे और बोले,—"यह आपका खयाल हो सकता है। मगर प्रमाण तो चाहिए। आज भी अगर आप प्रमाण दे दें तो मैं आपकी बात मान लेता हूँ।"

ऐसा कहकर उन्होंने अपने घुँघराले बालोंपर हाथ फेरा और सदन दूसरे मसले सुलझानेमें व्यस्त हो गया।

■ ■

आत्म-ज्ञान क्लब

मैं भी एक बार आत्म-ज्ञानियोंके चक्करमें पड़ गया था।

मैं तब चन्द्रा साहब, रिटायर्ड इंजीनियरकी चालमें किरायेदार रहता था।

एक शाम वह मुझे पैदल सिविल लाइंसकी सड़कपर चलते मिल गये। मैंने 'नमस्ते' के बाद वही निरर्थक प्रश्न किया, जो हम उनसे करते हैं, जिनसे ज्यादा बात नहीं करना चाहते—

"कहिए, कहाँ जा रहे हैं?"

चन्द्रा साहब रुक गये। बड़ी रहस्य-भरी मुसकान धारण करके बोले—"तुम नहीं जानते? आज शनिवार है न!"

शनिवारको ये कहाँ जाते हैं—मैं सोचने लगा। जहाँ भी जाते हों, इनका जाना इतना महत्वपूर्ण और मशहूर है कि इनके किरायेदारोंको तो उसकी जानकारी होनी ही चाहिए। मैंने बहुत अनुमान लगाकर डरते-डरते कहा—"हनुमानजीके दर्शन करने जा रहे होंगे।"

चन्द्रा साहब मेरे अज्ञानपर करुणासे मुसकराये, फिर रहस्य खोलने लगे—"अरे भई, हर शनिवारको 'आत्म-ज्ञान क्लब' की साधना-बैठक होती है न! ठेकेदार सम्पूरनदासके बँगलेपर! वहीं जा रहा हूँ।"

मुझे सब-कुछ याद आ गया। अखबारोंमें अकसर समाचार छपता है। मुझे मालूम नहीं था कि चन्द्रा साहब भी आत्म-ज्ञान क्लबके सदस्य हैं।

वह बोले—"तुम भी आया करो।"

मैंने पूछा—"वहाँ क्या होता है ?"

उन्होंने समझाया—"वहाँ आत्म-ज्ञानकी साधना होती है। चिन्तन, मनन, ध्यान और चर्चा होती है।"

मैंने पूछा—"किसके बारेमें ?"

वह बोले—"आत्माके बारेमें। मनुष्य अपनेको नहीं जानता। हम नहीं जानते कि हम कौन हैं। अपने सच्चे स्वरूपको पहचानना बहुत कठिन है। हम साधनासे यही जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूँ ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है ?"

मैंने फिर पूछा—"इससे क्या फायदा होता है ?"

वह मेरी बेवकूफीपर हँसकर बोले—"तुम तो आत्म-ज्ञानमें भी फायदा-नुकसान देखते हो। अरे, अपनेको पहचानना कोई मामूली बात है ? जीवनका यही परम ध्येय है। इस ज्ञानके बाद आदमी मायासे छूट जाता है। कभी आओ। अरे, कुछ परमार्थकी तरफ भी तो झुको। मायामें कबतक फँसे रहोगे ?"

मैंने उनसे आनेका वादा किया। चलते-चलते उन्होंने कहा—"आज तीन तारीख हो गयी, तुमने किराया नहीं दिया।"

मैंने कहा—"एक-दो दिनमें दे दूँगा। इस माह तनख़ाह देरसे मिल रही है।"

चन्द्रा साहबने मुँहको भरसक बिगाड़कर कहा—"तनखाह तुम्हारी कभी भी मिले, किराया मुझे पहलीको मिल जाना चाहिए। समझे ?"

वह छड़ी टेकते हुए परमार्थ-साधनाके लिए बढ़े और मैं किराया जुटानेकी मायामें फँसा घर लौटा।

उन्होंने एक-दो बार और आत्म-ज्ञान क्लबमें आनेके लिए कहा। मेरे बगलके हिस्सेमें जितेन्द्र रहता था। वह मेरे साथ काम करता था और मेरा मित्र भी था। उससे भी चन्द्रा साहबने आनेके लिए आग्रह किया था।

मैंने उससे कहा—"यार, अब कई बार कह चुके हैं। न जायेंगे तो भूखे मरेंगे।"

वह बोला—"यह बात मैं क्या ? हम भी यों ही आत्म-ज्ञानी हैं। हम जानते हैं कि हम बहुत सुन्दर हैं और पराकर पेट भरते हैं। यही अपना सच्चा स्वरूप है।"

मुझपर चन्द्रा साहबकी बातोंका कुछ असर था। मैंने कहा—"यह आत्म-ज्ञान नहीं है। यह वहाँ जानेके बाद ज्ञान होता है। चलो न एक दिन।"

एक शनिवारकी शामको हम लोग ठेकेदार सम्पूरनदासके बँगलेपर पहुँचे। फाटकमें घुसते ही कुत्ता भौंककर दौड़ा। हम ठिठक गये। जितेन्द्रने कहा—"हर कुत्ता जन्मसे ही आत्म-ज्ञानी होता है। वह जानता है कि मैं कुत्ता हूँ और मेरा काम भौंकना है। कई लोग अपने कुत्तेको 'टाइगर' कहते हैं, पर कुत्ता अपनेको कभी शेर नहीं समझता। वह अपने सच्चे स्वरूपको पहचानता है।"

मैंने कहा—"नहीं, ऐसा नहीं है। आत्म-ज्ञान जीवधारियोंमें सिर्फ़ मनुष्योंको प्राप्त होता है और कुत्ता मनुष्यके बहुत पास रहता है, इसलिए थोड़ा आत्म-ज्ञान उसे भी हो जाता है। तुम देखते नहीं हो, इनके भौंकनेमें कुछ पवित्रता है जो और कुत्तोंके भौंकनेमें नहीं होती। यह आत्म-ज्ञान-साधकोंकी संगतिमें रहता है न। यह किसीको काट ले तो उस आदमीकी भी आत्मा प्रकट हो जाये।"

चन्द्रा साहब और ठेकेदार सम्पूरनदास बरामदेमें आ गये और उन्होंने कुत्तेको बुला लिया। हम लोग जन्मजात आत्म-ज्ञानीके काटनेसे बच गये।

हम लोग कमरेमें गये। वहाँ दस-बारह आदमी सोफ़े और आराम-कुरसियोंपर बैठे थे। हमें साधारण कुरसियाँ दे दी गयीं क्योंकि हम किरायेदार थे।

मैंने उन साधकोंपर, नजर घुमायी। इनमेंसे कईको मैं अलग-अलग जानता था, पर मुझे नहीं मालूम था कि इन लोगोंने मिलकर आत्म-ज्ञान क्लब बना लिया है। चन्द्रा साहब और सम्पूरनदासकी आत्माओंके तो सम्बन्ध पिछले पच्चीस-तीस वर्षोंसे चले आ रहे थे। चन्द्रा साहब ठेकेदार सम्पूरनदासको ठेके दिया करते थे और कुछ ऐसा चमत्कार होता था कि हर इमारत या पुलमेंसे चन्द्रा साहबका एक मकान पैदा हो जाता था। छोटी इमारत होती, तो किसी मकानका गुसलखाना ही उसमेंसे निकल आता था। रिटायर होते-होते चन्द्रा साहबके कई मकान हो गये थे, जो किरायेपर चल रहे थे। उनके बैंकके खातेमें भी जबतक हलचल होती रहती थी।

वहाँ सेवकजी भी बैठे थे, जो बड़े पुराने नेता थे। लोगोंने हल्ला कर रखा था कि वह दो-तीन चुनाव हार गये थे और उन्हें आत्म-ज्ञानकी सख्त जरूरत पड़ गयी थी।

एक प्रोफ़ेसर साहब भाई थे। उन्होंने दाढ़ी बढ़ा रखी थी। ऊँची धोती और नीचा कुरता पहनते थे। वह ठण्डकी रातोंमें बगीचेमें उघाड़े घूमते थे। पिछले साल सरकस देखकर जब हम लौटते, तो बगीचेमें थोड़ी देर रुककर प्रोफ़ेसर साहबको भी देखते। जिनेन्द्रका कहना था कि सर्कसमें जो कुएँमें मोटर साइकिल चलाता है, वह भी ठण्डमें ऐसे नहीं घूम सकता। वह पैंतीस वर्षकी अवस्थामें भी अविवाहित थे।

वहाँ एडवोकेट शुक्ला भी थे, जिनकी दो बिन-ब्याही जवान लड़कियाँ थीं। जिसकी बिन-ब्याही लड़कियाँ हों, उसे आत्म-ज्ञानकी तो ही जरूरत है। सुना था कि बड़ी लड़कीकी शादी वह प्रोफ़ेसरसे करनेकी कोशिशमें थे। चन्द्रा साहबने कह दिया था कि वह प्रोफ़ेसरको तैयार कर देंगे। शुक्लाका ध्यान प्रोफ़ेसरकी आत्माकी अपेक्षा उनके शरीरपर अधिक था। सोचते होंगे कि किस शुभ दिन यह दाढ़ी मुड़ेगी।

इन लोगोंके सिवा वहाँ दो-तीन व्यापारी और एक-दो रिटायर्ड अफ़-

कर रहे थे ।

कमरेमें अगरबत्ती जल रही थी । ठेकेदारका एक बड़ा चित्र टंगा था—मेरे खयालसे, जैसा फिल्मोंमें भगवान बना रहता है । नीचे लिखा था—"आत्मा ।" ठेकेदार फूल चढ़ाते थे ।

गांधीजीकी मुद्रामें बैठे हुए नेताजीने कहा—"हाँ तो मैं कह रहा था कि जनताका नैतिक स्तर बहुत गिर गया है । पहले जनताके मनमें विश्वास था, पर अब वह विश्वास उठ गया था । गांधीजी करोड़ों रुपयेका चन्दा इकट्ठा करते थे, पर कोई हिसाब नहीं पूछता था । पर अब तो पाँच रुपयेके चन्देका भी लोग हिसाब माँगते हैं । जिस जातिके हृदयसे विश्वास उठ जाये, उसका पतन अवश्य होता है ।" जातिके पतनसे दुखी हो, उन्होंने गम्भीर मुद्रा की ।

सहसा प्रोफेसर उठे और आँखें बन्द करके, हाथ जोड़कर ऊँचे स्वर में बोले—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यश्च !"

सब शान्त हो गये । आँखें मूँद ली ।

प्रोफ़ेसरने तीन बार कहा—"मैं कौन हूँ ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है ?" दूसरोंने प्रश्नोंको दुहराया और मग्न हो गये । हमने भी देखा-देखी की ।

प्रोफ़ेसरने आँखें खोलीं, तो सबने खोल दीं । इसका मतलब है कि सब एक आँख आधी खोलकर देख रहे थे कि कब प्रोफ़ेसर आँखें खोलें ।

चर्चा शुरू हुई । प्रोफ़ेसरने शुरू किया—"आदिकालसे मनुष्यके मनमें ये प्रश्न गूँज रहे हैं—"मैं कौन हूँ ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है ? मनुष्य अपनेको जानना चाहता है ...."

इसी समय एक आदमीने आकर ठेकेदारसे कहा कि लड़केकी तबीयत ज्यादा खराब हो गयी, डॉक्टरको फ़ोन कर लेने दीजिए ।

ठेकेदारको गुस्सा आ गया । बोला—"वक़्त-बेवक़्त नहीं देखते, फ़ोन

करने आ जाते हैं, ले क्यों नहीं आते डॉक्टरको ?"

घबराये हुए आदमीने जवाब दिया कि जानेमें देर लगेगी, फोन कर देनेसे वह अपनी कारपर फौरन आ जायेंगे।

ठेकेदारने उसे दस बातें और सुनायी।

पर उसे फोन कर लेने दिया। मगर उसके बाद चर्चा हो ही नहीं पायी। यों घण्टे-भर यह चर्चा अवश्य होती रही कि पड़ोसी कितना तंग करते हैं। सब पड़ोसियोंसे सताये हुए थे।

उस दिन बैठक बड़े दु:खके साथ खत्म हुई। वे लोग दु:खी थे कि आत्मज्ञानकी उपलब्धि एक हफ्ता और टल गयी।

दूसरे शनिवारको फिर साधनामें बाधा आयी।

मैं कौन हूँ ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है ? इन प्रश्नोंके बाद ध्यानके बीचमें ही ठेकेदार बोल उठा—"आज चन्द्रा साहबका मूड कुछ खराब मालूम होता है।"

सबने आँखें खोल दीं। सब चन्द्रा साहबको ऐसे ध्यानसे देखने लगे, जैसे वही सबकी आत्मा हों।

चन्द्रा साहबने कहा—"क्या बतायें। सांसारिक दु:ख छोड़ते नहीं। माया-जाल है। आदमी आदमीको दु:ख देता है।"

वह रुआँसे हो गये।

सबको चिन्ता हुई। एडवोकेट शुक्लाने पूछा—"आखिर हुआ क्या, चन्द्रा साहब ?"

चन्द्रा साहबने कहा—"एक किरायेदारके मकानमें लगा हाथका पम्प खराब हो गया था। मैंने कह दिया था कि मैं सुभीतेसे ठीक करा दूँगा। पर उसने तो नया 'वाशर' लगवा लिया और दस रुपये किरायेमें-से काटने लगा। मैंने एतराज किया, तो कहने लगा कि क्या हम प्यासे मरें। भला बताइए, है न धाँधली। मैं तो उसे ठीक कराता ही। अगर तुम्हें जल्दी है तो तुम अपने खर्चेसे नल ठीक कराओ।"

चन्द्रा साहबको सबकी सहानुभूति हुई। एडवोकेट साहबको कुछ भी आया। कहा—"मैं भी इन दिनों मकानमें किराया देता हूँ। मैं ही 'इन्वेस्टमेन्ट' बाकायदा करता हूँ।

हमलोग चन्द्रा साहबके मुखपर सन्तोष पढ़ना चाहा। चन्द्रा साहबने [illegible] भी कि [illegible] कड़ा हुआ। प्रोफेसरने दार्शनिक मुद्रामें कहा—"आत्म-ज्ञान मकान-मालिकका सबसे ईश्वरके पास ही है। ईश्वरने सृष्टि रची, पृथ्वी बनायी, आकाश बनाया लेकिन मकान नहीं बनाये। मनुष्य पृथ्वीपर, खुले आकाशके नीचे ही रह सकता था। तब मकान-मालिकोंने मनुष्योंके रहनेके लिए मकान बनाये। जो किरायेदारोंके लिए मकान बनाते हैं, वे ईश्वरके समान ही पूज्य हैं। पर इस बातको बहुत कम किरायेदार समझते हैं।"

हमने भी चन्द्रा साहबकी तरफ आशासे देखा कि अब वह प्रसन्न हो गये होंगे।

चन्द्रा साहब कुछ प्रसन्न तो हुए, पर आत्माकी चर्चा करनेके लिए उनका मन तैयार नहीं हुआ।

सभी उदासीमें डूबे रहे। बड़ी देर तक किरायेदारोंकी दुष्टताकी चर्चा होती रही। आत्मज्ञानकी प्राप्ति एक हफ्ते और टल गयी।

मैं और जितेन्द्र लगभग हर शनिवारको साधनामें शामिल होने लगे। प्रोफेसर दाढ़ीमें तेल चुपड़ने लगा था। इसे देखकर एडवोकेट शुक्ला बहुत आशावान हो गये थे।

फिर एकाएक मेरा तबादला हो गया। आत्म-ज्ञानकी साधना वहीं छूट गयी।

अभी दो साल बाद मुझे जितेन्द्र मिला। मैंने पूछा—"आत्म-ज्ञान साधकोंके क्या हाल हैं?"

जितेन्द्रने कहा—"उनकी साधना सफल हो गयी। उन्हें आत्म-ज्ञान हो गया।"

मैंने कहा—"आत्म-ज्ञान हो गया ? फिर सब उनके क्या हाल हैं ?"

जितेन्द्रने बताया—"उनके अलग-अलग हाल हैं। चन्द्रा साहब, सम्पूरनदास और नेताजी पागलखानेमें हैं। प्रोफेसरने शादी कर ली है। वे दोनों सेठ जेलमें हैं।"

मैंने कहा—"अरे, यह कैसे हुआ ?"

जितेन्द्रने बताया—"एक दिन जब उनकी साधना चरम बिन्दुपर पहुँची और उन्होंने ध्यान करके प्रश्न किये—'मैं कौन हूँ ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है ?' तो आत्मामें आवाजें आने लगी।"

चन्द्रा साहबकी आत्मासे आवाज आयी—"मैं बेईमान हूँ। मैं घूसखोर हूँ।"

सम्पूरनदासकी आत्मामें आवाज आयी—"मैं चोर हूँ। मैं बेईमान हूँ।"

नेताजीकी आत्मामें आवाज आयी—"मैं पाखण्डी हूँ। मैं नीच हूँ।"

दोनों सेठोंकी आत्माओंसे आवाज आयी—"मैं इनकमटैक्स चोर हूँ। मैं दो हिसाब रखनेवाला हूँ।"

सबकी जागृत आत्मामें निरन्तर ये आवाजें आने लगी और वे सड़कोंपर चिल्लाते घूमने लगे—"मैं चोर हूँ। मैं बेईमान हूँ। मैं पाखण्डी हूँ…"

आखिर चन्द्रा साहब, सम्पूरनदास और नेताजी तो पागलखाने भेजे गये और दोनों सेठ जेलमें हैं।

प्रोफेसरने जब आत्मासे पूछा—"मैं कौन हूँ ? मेरा सच्चा स्वरूप क्या है ?" तो जवाब आया—"मैं नर हूँ, मुझे मादा चाहिए।" उसने एडवोकेट शुक्लाकी बड़ी लड़कीसे शादी कर ली। शुक्लाकी आत्मामें कोई आवाज नहीं आयी, क्योंकि वह आत्मज्ञानके लिए नहीं आता था, लड़कीकी शादी जमाने आता था।"

आत्मज्ञान बेचारोंको ले डूबा। मेरा तबादला न होता, तो मैं भी उन साधकोंके चक्करमें पड़ जाता। तब न जाने क्या होता ?

■ ■

गान्धीजीका शाल

चार दिन हो गये, पर शालका पता नहीं चला। सेवकजीने रेलवे स्टेशनपर पूछताछ की, ट्रेनमें साथ बैठे एक परिचित सज्जनसे पूछा, पर कोई खोज नहीं मिली। खुद जितना पता लगा सकते थे, लगा लिया। पुलिसमें रिपोर्ट करने और अखबारमें विज्ञप्ति छपानेकी बात मनमें उठी थी, पर सेवकजीने सोचा, कि यह गान्धीजीका दिया हुआ पवित्र शाल था, उसे पुलिस और अखबारी मामलोंमें घसीटनेसे इसकी पवित्रता नष्ट होगी। कोई मामूलीसा टुकड़ा या मफ़लर तो था नहीं। पूज्य गान्धीजीका शाल था।

सेवकजी रोजकी तरह दरवाजेके बीच कुरसी लगाकर बैठे थे। गोदमें मुड़ा हुआ अखबार पड़ा था। बार-बार चश्मा निकालते, धोतीसे पोंछकर फिर लगा लेते, पर पढ़ते कुछ नहीं। सोच रहे थे, सोच-सोचकर आह भर रहे थे और आह भरकर कहीं शून्यमें देख रहे थे। सड़कपर-से कितने ही परिचित निकल गये। सेवकजीने किसीको नहीं बुलाया। और दिन होता, तो वे परिचितको देखते ही वहींसे बैठे-बैठे, 'जय हिन्द' उछालकर उसे रोकते। बड़ी चौड़ी मुसकान धारण करके उसके पास जाते, उसका हाथ पकड़ लेते और घोर आत्मीयतासे कहते—"ऐसा नहीं हो सकता। आप बिना चाय पिये नहीं जा सकते।" पकड़कर भीतर ले आते, चाय बुलाते, अलमारीमें-से एक फ़ाइल निकालते, जिसमें वे अखबारी कतरनें लगी थीं, जिसमें किसी भी सन्दर्भमें उनका नाम छपा था। इनमें वह कतरन भी थी, जिसमें उनके बचपनमें खो जानेपर पिताने उनकी खोजके

लिए विज्ञप्ति छपायी थी। एक-एककर सब कतरनें वे बताते और बीच-बीचमें अपनी राष्ट्र और समाज-सेवाओंका उल्लेख करते जाते। वे बतलाते; कि किस सन्‌में किस नेताके साथ वे किस जेलमें थे और उसने इनसे तब क्या कहा था? लगता; कि उनके दिमागमें भी फाइलें खुली हैं; जिनमें सिलसिलेवार सब तथ्य नत्थी हैं। परिचित उठनेका उपक्रम करता, तो सेवकजी आग्रहसे उसका हाथ पकड़कर कहते—"बस! एक मिनिट और। मैं आपको अपने जीवनकी सबसे मूल्यवान्, सबसे पवित्र वस्तु बतलाता हूँ।" वे अल्मारीमेंसे तह किया हुआ एक हलके नीले रंगका शाल निकालते और आरतीके थालकी तरह सामने करके, भाव-विभोर हो कहते—"यह शाल मुझे पूज्य गान्धीजीने दिया था। मेरे विवाहमें वे स्वयं आशीर्वाद देने आये थे। हम दोनोंके सिरोंपर हाथ रखकर मुझसे बोले—'तू मेरा बेटा नहीं, यह मेरी बेटी है।' खिलखिलाकर हँस पड़े बापू और यह शाल हम दोनोंको उढ़ा दिया। आज वे नहीं हैं……" वे आँखें बन्द कर लेते और भाव-तल्लीन हो जाते। परिचित अगर समझदार होता, तो इस स्थितिका लाभ उठाकर बिना 'जय हिन्द' किये ही झटपट निकल भागता। कोई परिचित उस सड़कसे बिना उन कतरनों और उस शालको देखे, निकल नहीं सकता था। आज चार दिनोंसे लोग बेखटके निकल रहे थे। सेवकजी उन्हें नहीं छेड़ते थे। सोचते—उस घरमें अब किसीको क्या बुलायें, जिसकी श्री ही चली गयी है।

टाउन हॉलमें शामको सभाकी घोषणा करता हुआ लाउडस्पीकर लगा ताँगा निकला। सेवकजीके मनमें उमंग उठी, फुरफुरी आ गयी। वे उठकर खड़े हो गये। दूसरे ही क्षण सोचा—"कैसे जाऊँ? शाल जो खो गया!" [illegible] हो क्योंकि उनसे कोई सभा नहीं छूटी थी। हर सभामें वे गान्धीजीका शाल ओढ़कर पहुँच जाते। मंचपर बैठते और अन्तिम वक्ताके बाद खड़े होकर कहते—"मुझे भी इस विषयपर दो शब्द कहना है।" माइक पकड़कर वे बोलने लगते—"……मैंने जो कुछ भी सीखा है;

पुराने साथियोंकी [illegible] बैठकर । वे शाल [illegible] और [illegible] थे । मैंने [illegible] के [illegible] आशीर्वाद देने आये । [illegible] बीमारीके [illegible] [illegible] —'यह शाल [illegible], [illegible] है ।' [illegible] [illegible] और [illegible] । यह आशीर्वाद है । मैंने जीवनकी [illegible], [illegible] मिली है । सभा होती, तो लोग जानते थे, कि सेवकजी [illegible] और [illegible] आगे बैठ जायेंगे । पर सभाओंमें [illegible] थे, कि सभापतिने उन्हें बताया था । [illegible] । [illegible] किसी [illegible] आवाज लगायी—"सेवक जी ! आप शालके आगे [illegible] !" लोग हँस पड़े । पर सेवकजीने [illegible] कहा—"[illegible] उठाया ही गया है, तो [illegible] है । यह शाल [illegible]—"

शाल [illegible] था, [illegible] हो गये थे । पर सेवकजी [illegible] करते थे । उसे ओढ़कर अपनेको अजेय अनुभव करते थे । शालमें उनकी ताकत थी, प्रतिष्ठा थी । शाल उनके जीवनकी एकमात्र शक्ति थी । वही शाल खो गया । सेवकजी सभाओं-समारोहोंकी चर्चाएँ सुनते और मन मसोसकर रह जाते । कल ही श्रम-मन्त्री आये थे । उनकी सभामें बोलना सेवकजीको जरूरी लगा था, पर शाल बिना वे सत्त्वहीन हो गये थे । किसीने कहा था—"सेवकजी ! आजकल आप सभाओंमें नहीं दिखते ।" सेवकजीने घोर निराशासे जवाब दिया—"बस भई ! बहुत हो गया । अब हम सार्वजनिक जीवनसे संन्यास लेंगे ।" आज उन्हें लग रहा था कि संन्यास नहीं लिया जा सकता । ऐसे तो जिया भी नहीं जा सकता । जीवनकी निरर्थकताका बोध बड़ी तीव्रतासे उन्हें हो रहा था । जीवन रीता हो गया, प्रयोजनहीन हो गया ।

सेवकजी उस पीढ़ीके थे, जिसने जवानीके आरम्भमें निश्चय लिया था, कि जीवन-भर देशकी स्वतन्त्रताके लिए संग्राम करेंगे । पर स्वतन्त्रता

.. गयी, जीवन शेष रहा। अब क्या करें ? यह तो सोचा ही नहीं
स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद क्या करेंगे ? जिन्होंने सोच लिया था
ता भी बना ली थी, वे सरकार चलाने लगे। कुछ विरोधी
शामिल हो गये। लेकिन जो चुनाव लड़कर भी जीत नहीं सके
रकारमें नहीं जा सके, वे बड़ी उलझनमें पड़ गये। वे हारे हुए
ारा हुआ राजा रनिवासमें जाता था; हारा हुआ नेता अध्यात्ममें
है।

वकजी भी अध्यात्ममें गये, पर वहाँ मन नहीं लगा। २४-३० वर्षों-
वंजनिक जीवन, स्वतन्त्रता संग्रामके जमानेकी वे भीड़ें, नारोंपर
ध्वनियाँ, उद्गारोंपर जयजयकार 'महात्मा गान्धीकी जय', 'इन-
जिन्दाबाद' के दमपर वे पुष्पहार, वे आरतियाँ। ये स्मृतियाँ
उसी तरह पीड़ित करती, जिस तरह तपस्वीको विलासकी स्मृतियाँ।
ट आये। हर सभा-समारोहमें वे शामिल होने लगे, लोगोंको कतरने
और संस्मरण सुनाने लगे और पुराने जेल-साथी और अब शासक
लोगोंके पास शाल ओढ़कर जाकर जिस-तिसका काम सिद्ध करवाने
। इस तरह दिन कट जाता और अपनी सार्थकताका बोध भी बना
ा।

पर अब क्या करें ? वे पूरे जोरसे सोच रहे थे। शाल जीवन-शक्ति
ले गया। अब किसलिए जियें ? जियें, तो करें क्या ? ऐसे जीनेसे मर
ना अच्छा ! पर वे मरे नहीं। एक विचार उनके मनमें सहसा आया
र उसके आवेगसे वे खड़े हो गये। चप्पल पहनी और दूर सदरके
तेमें कपड़ोंकी एक दूकानपर गये। शाल निकलवाये और हलके नीले
के एक शालकी कीमत पूछी। मनमें शंका उठी—क्या यह मिथ्याचार
ो है ? समाधान कर लिया—वस्तु सत्य नहीं है, भावना सत्य है।
ल खरीदकर सेवकजी घर आये। अब समस्या खड़ी हुई—इसका
ापन कैसे मिटे ? सेवकजीने उसे पानीमें डुबाकर सुखाया, उससे फ़र्श

[illegible] किया, [illegible] दिन [illegible] आदत [illegible] गये। [illegible] को [illegible] हो चुकी। [illegible] सवाल [illegible] को [illegible] कर दिया। [illegible] हो गया, [illegible] थी, [illegible] [illegible] — [illegible] [illegible] करते, कि [illegible] — यह मिथ्याचार है। [illegible] — वस्तु सत्य नहीं है, भावना सत्य है।

शामकी सभाकी [illegible] हो चुकी थी। सेवकजी कई दिनोंके बाद आज सभामें आनेको [illegible] रहे थे। [illegible] शालके [illegible] निकालकर पहनी, [illegible] निकाला और ओढ़ा। फिर प्रश्न उठा — यह मिथ्याचार है। जवाब दूसरे कोनेसे उठा — वस्तु सत्य नहीं है, भावना सत्य है।

सेवकजी मंचपर बैठ गये। [illegible] — कहीं कोई भेद जान न ले? कोई गहरा ही देखता, तो वे [illegible] जाते, कि इसने शालका [illegible] किया है। वही बेचैनी थी। अन्तिम वक्ताके बाद वे खड़े हुए। बोले—"मुझे भी इस विषयपर दो शब्द कहना है।" उन्होंने माइकका डण्डा पकड़ लिया। दिल धड़क रहा था और हाथ काँप रहे थे। आज पैरोंको स्थिर रखनेका प्रयत्न करना पड़ रहा था। बोलना शुरू किया—"....मैंने जो कुछ भी सीखा है, पूज्य गान्धीजीके चरणोंमें बैठकर। वे मुझे पुत्रवत् स्नेह करते थे। मेरे विवाहके अवसर यह शाल उन्होंने मुझे दिया था। बापू स्वयं—"

पहली पंक्तिमें बैठा एक आदमी उठकर खड़ा हो गया और बोला—"क्यों झूठ बोलते हैं सेवकजी? यह शाल तो बिलकुल नया है और मिलका है। भला गान्धीजी मिलका शाल देते?"

सभामें हँसी उठी, कोलाहल हुआ, सेवकजीके पाँव डगमगाये, मुट्ठी ढीली होकर माइकके डण्डेपर-से फिसलने लगी और वे वहीं बैठ गये।

■ ■

एयरकण्डीशण्ड आत्मा

मईकी दोपहरमें दो आत्माएँ भटकती हुई तीसरी आत्माके एयरकण्डीशण्ड कमरेमें घुस गयीं।

बाहर पुराने लेखकोंके 'भगवान् भुवन भास्कर' (अनुप्रास देखो) कोपसे तप रहे थे। पक्षी मौन हो पत्तोंकी आड़में सहमे बैठे थे, जैसे हूटिंग होनेपर कवि सहमकर चुप हो जाता है।

ऐसेमें एक पुरानी कार रुकी और एक रेशमी आत्मा उतरकर हवेलीमें घुस गयी।

इसके बाद रिक्शा रुका और एक खद्दरी आत्मा भी उतरकर उसी हवेलीमें घुस गयी।

इस कोनेपर धार्मिक पुस्तकोंकी दूकानपर बैठे ईश्वरके इण्टेलिजेंस विभागके आदमीने नोट किया—"दोपहरको स्वामी चेतनानन्द भैया साहबकी हवेलीमें गये।"

उस कोनेमें भँगेड़ीके होटलमें बैठे सरकारके इण्टेलिजेंसके आदमीने नोट किया—"एक शख्स जिसका नाम हरिशंकर वल्द नामालूम है, दोपहरको भैया साहबके घरमें जाता देखा गया। यह शख्स किताबें और लेख लिखता है।"

ईश्वरी जासूस लेखकको नहीं पहचानता। सरकारी जासूस स्वामीजीको पहचानता तो था, पर मुहकमे ? अफसरके यहाँ १५ सालके बाद लड़का तब हुआ जब स्वामीजीने अनुष्ठान किया। लड़का १५-१६ सालोंसे पेटमेंसे अनुष्ठान माँग रहा था, मगर साहब उसे दवाएँ दे रहे थे।

[illegible] ।

[illegible] था । सेठ साहबकी आभा [illegible] थी । [illegible] थी ।

[illegible] बैठ गये ।

स्वामीजी 'स्वाध्याय' [illegible] रहे थे ।

मैं—([illegible], पर मुझे अपनी आदतसे लाचार [illegible]) मैं [illegible] कभी सेठ साहब की तरफ और कभी स्वामीजीकी तरफ देख लेता था । [illegible] देखा, जिसमें हनुमान् [illegible] लिखा हुआ 'राम' [illegible] थे ।

सेठ साहबने आँखें खोल दीं, पुस्तकको आँखोंसे लगाकर, [illegible] रखा और स्वामीजीके चरण छूकर [illegible] नमस्कारका जवाब दिया और बैठ गये ।

मैंने पूछा—"यह कौन-सी किताब है ।"

वे बोले—"किताब नहीं, ग्रन्थ है । गीता है !"

—"बड़ी मोटी है ।"

—"हाँ बड़ी अठारोंगी है ।"

—"इसे सिरपर क्यों रखे थे ?"

—"रखे नहीं था, मस्तकपर धारण किये हुए थे । आजकल हमारा मन अध्यात्ममें ही लगा रहता है । बस आत्मा ही सत्य है, शरीर मिथ्या है । हम रोज आधा घण्टा गीताको मस्तकपर धारण करके बैठे रहते हैं ।"

[मुझे पैसे लेना था, इसलिए बातचीतका रुख उनके अनुकूल करने लगा]

कहा—"यह बड़ा अच्छा करते हैं आप । किसीने ऐसा नहीं किया । लोग इसे पढ़नेमें समय गँवाते हैं । आप समूची सिरपर रख लेते हैं ।"

—"बड़ी शान्ति मिलती है ।"

—"क्यों न मिलेगी। गीताका ज्ञान आपके भीतर मनमें पहुँच जाता होगा। गीताका यही प्रताप है। किताबोंकी दूकानमें जिस अलमारीमें यह रखी रहती है उसमें इतना आत्म-ज्ञान भर जाता है कि पुस्तकें अपनी कीमत बढ़ा लेती हैं। जिस प्रेसमें यह छपती है, उसकी मशीनें कभी नहीं बिगड़ती। जो कर्मचारी इसे कम्पोज करते हैं, वे इतने आत्म-ज्ञानी हो जाते हैं कि वेतन बढ़ानेकी माँग नहीं करते। मालगाड़ीके एक डिब्बेमें एक बार प्रवचन होते सुना गया। रेलवेवालोंने डिब्बा खोलकर देखा कि उसमें गीताकी पेटी रखी है।"

स्वामीजीने मेरी तरफ देखा। आँखोंमें इशारा था—"कोई बात नहीं। इतना चल जायेगा। मुझे धन्यवाद दो कि यह नहीं समझ रहा है।"

—"मुझे इस साधनामें बड़ा फायदा हुआ है।"

—"जी हाँ, सो तो दिख रहा है। गीता-ज्ञानने सिरके भीतर घुसनेके लिए किस करीनेसे चाँद निकाली है। जिन छेदोंसे पसीना निकलता है, उनसे सूक्ष्म ज्ञान भीतर घुस जाता होगा।"

स्वामीजीने मेरी तरफ देखा—"अब ज्यादा हो गया।"

भैया साहब सोचने लगे।

स्वामीजीने कहा—"क्या चिन्तन कर रहे हैं?"

—"गीताके बारेमें ही सोच रहा हूँ।"

—"क्या सोच रहे हैं?"

—"यही कि जब यह ग्रन्थ लिखा गया, तब छापाखाना नहीं था। अब छापाखाना है, तो कोई ऐसा ग्रन्थ लिखता नहीं है।"

मेरी तरफ मुखातिब होकर कहा—"तुमने इतनी किताबें लिखीं, पर ऐसी एक नहीं। एक पुस्तक तुम भी ऐसी लिखकर दो और हम छापें। अरबों बिकेंगी।"

मैंने कहा—"मगर यह तो भगवान् कृष्णकी रचना है, ईश्वरकी।"

भैया साहबने कहा—"अरे, [illegible] स्वामीजी [illegible] हैं। तुम भी [illegible] [illegible]।"

स्वामीजी [illegible]।

भैया साहबने [illegible] स्वामीजीकी कृपासे हुआ है। आते ही [illegible]।"

स्वामीजीने कहा—"यह तो [illegible] है, आत्मा [illegible] है। देह दुख है। सुख, [illegible] और [illegible] है।"

भैया साहबने कहा—"[illegible] आपको हम [illegible] स्वामीजी [illegible] हैं। और [illegible] है।"

[[illegible] —[illegible], जिनके [illegible] 'सोसायटी' चाहिए। आत्माके [illegible] साधु चाहिए। [illegible], [illegible] और साधु होना। साधु [illegible] 'फिगर' [illegible] आत्मिक [illegible] भी कम करता है।]

स्वामीजीने कहा—"[illegible] तभी [illegible] होता है, जब आत्मा पवित्र हो। आपकी आत्मा [illegible] और [illegible] हुई है।"

[लगा, भैया साहब का [illegible] टूट रहा है पर स्वामीजीका बढ़ रहा है]

भैया साहबने कहा—"[illegible] हमारा बहुत प्रेम है। सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।"

फ़ोनकी घण्टी बजी। उन्होंने उठाकर पूछा—"कौन बोल रहे हैं? पिताजी कहा कि अमुक आपसे बात करना चाहते हैं।"

भैया सा'बने कहा—"बोल दो घरमें नहीं हैं [सांच बराबर तप नहीं—] पैसेके लिए दस बार फ़ोन करेंगे। माया! माया!" [वह लेनेवाला था, जिसकी मायाको धिक्कारा जा रहा था]

मैंने स्वामीजीकी उपस्थितिपर नाराजी जाहिर करनी चाही। पूछा—"इस गरमीमें आपका आना कैसे हुआ?"

[यह टले तो मैं कामकी बात करूँ]

स्वामीजीने कहा—"आज भैया सा'ब का जन्म-दिन है न ! पचपनवाँ जन्म-दिन। सो उपदेश होंगे, पूजा होगी, उपरान्त 'भोजन परशादी' होगी।"

जन्म-दिन ? मिथ्या देह, रोग, दु:ख, पापकी खान एक साल और रह गयी।

मैंने कहा—"मुझे बहुत अफसोस है कि आपका जन्म-दिन है। पहले मालूम होता कि आज आपका दु:खका दिन है, तो हरगिज न आता। बहरहाल, मेरी हार्दिक सहानुभूति ग्रहण करिए। ईश्वर करे यह अशुभ दिन आगे न आये।

दोनों हैरतमें थे।

स्वामीजीने कहा—"जन्म-दिन दु:खका दिन थोड़े ही है।"

मैंने कहा—"क्यों नहीं ? यह देह जो मिथ्या है, पापकी खान है, यह एक साल और रही, इसकी याद दिलानेवाला दिन क्या खुशीका दिन है।"

स्वामीजीने कहा—"ओह !"

भैया सा'ब ने कहा—"तुम बात पकड़ लेते हो।"

स्वामीजी चाहते थे कि मैं उठूँ और वे अपनी बात करें। मैं चाहता था वे उठें और मैं अपनी बात करूँ।

ठण्डे कमरेमें आत्माका ताप चला गया था। भैया सा'बकी आत्मा ज्यादा ठण्डी थी। वे चाहते थे कि दोनों बैठे रहें, पर चर्चा अध्यात्मकी ही हो। मायाका प्रसंग न छिड़े। माया-सम्बन्धी एक फ़ोनने उनकी आत्माको अभी बड़ा क्लेश पहुँचाया था।

सबकी आत्माको शान्ति चाहिए, मेरीको भी।

मैंने कहा—"आप लोगोंकी तरह मैं भी आत्माकी शान्ति चाहता हूँ।"

दोनों खुश हुए—"बड़ी अच्छी बात है।"

बात आगे बढ़ायी—"मैं यहाँ आत्माकी शान्तिकी खोजमें ही

चाहता है।"

भैया सा'ब चुप। स्वामीजीने उत्साहसे कहा—"क्यों नहीं? इनका यह व्यापार तो आध्यात्मिक है। मैं भी इससे आत्म-शान्ति पाता हूँ।"

बात और आगे बढ़ाई—"जी हाँ, मैं भी इसी कामसे आत्म-शान्ति पाना चाहता हूँ। मेरी आत्माको तभी शान्ति मिलेगी, जब भैया सा'ब मेरे बकाया रुपये दे देंगे। मुझसे जो काम करवाया था, उसके रुपये मुझे लेना है।"

स्वामीजीने फिर सोचना शुरू किया।

भैया सा'बने कहा—"जैसी आत्मा तुम्हारी, वैसी हमारी। हम भी आत्माकी शान्ति चाहते हैं। अगर हम रुपये दे देंगे, तो हमारी आत्मा अशान्त हो जायेगी।"

मैंने कहा—"पर पैसे मिले बिना मेरी भी तो आत्मा अशान्त रहेगी।"

भैया सा'ब बोले—"और हमारी आत्मा क्या फ़ालतू ही है? इतने दिनोंसे हम साधनासे उसे शान्त करनेकी कोशिश कर रहे हैं। और तुम थोड़े-से रुपयोंके लिए सारी साधनाको मिटा देना चाहते हो।"

मैंने कहा—"पर सवाल मेरी आत्माका भी तो है।"

भैया सा'बने कहा—"अच्छा, हम इसका फ़ैसला स्वामीजीपर छोड़ दें।"

स्वामीजीने थोड़ी देर तक आँखें बन्द करके चिन्तन किया। फिर कहा—"प्रश्न बहुत जटिल है। इसके निर्णयपर तीसरी आत्माकी शान्ति निर्भर है। याने मेरी आत्माकी। मैं भी आत्माकी शान्तिकी खोजमें हूँ। मेरी यह कार बहुत खराब हो गयी है। बहुत दिनोंसे मैं चाह रहा हूँ कि भैया सा'बकी वह छोटी कार, जिसका उपयोग वे नहीं करते, प्राप्त कर लूँ। उस कारके मिलनेसे मेरी आत्माको शान्ति मिल जायेगी। अगर मैं आपको इनसे पैसा दिला दूँ, तो ये मुझसे अप्रसन्न हो जायेंगे और कार

नहीं देंगे। इस तरह आपको पैसा मिलनेसे उनकी आत्मा भी अशान्त होगी और मेरी भी।"

मैंने कहा—"याने आपका निर्णय है—"

स्वामीजीने कहा—"मेरा निर्णय है कि किसी आत्माको यह अधिकार नहीं है कि वह दो आत्माओंको क्लेश पहुँचाकर शान्ति प्राप्त करे। इसलिए आपको ये पैसा नहीं देंगे।"

भैया सा'बने मुझसे कहा—"सुन लिया। अब आप जाइए।"

स्वामीजीसे कहा—"पर आपने भी कारकी बात करके हमारी आत्माको कुछ ठेस पहुँचायी है।"

स्वामीजी बोले—"पहले इस आत्माको यहाँसे निकालिए। हमारी-आपकी आत्माओंका विवाद तो सुलझ जायेगा।"

दरवाजे खुले और मेरी आत्मा सड़कपर आ गयी।

भीतरसे उन आत्माओंने झाँककर कहा—"बाहर बड़ी गरमी है।"

■ ■

आक्रमण

इन दिनों दो आदमियोंकी बातचीत है :

"भारतीय सेना लाहौरकी तरफ बढ़ गयी—अन्तरराष्ट्रीय सीमा पार करके।"

"हाँ, बढ़ना था। हमारी शक्तिशाली सेनाओं दोनोंके लिए यह जरूरी है।"

"क्या जरूरी है! जहाँ वे लड़ें, वहाँ लड़ना चाहिए या हर कहीं घुसना चाहिए?"

"हाँ, उधर नहीं बढ़ना था।"

"मगर मैं कहता हूँ, क्यों नहीं बढ़ना था? उधरसे दबाव नहीं पड़ेगा तो इधर तुम्हारे पाँव टिक सकते हैं क्या?"

"फिर तो उधर बढ़ना ठीक ही हुआ।"

"ठीक हुआ! ठीक हुआ! कुछ समझते भी हो! इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब होता है—टोटल वार! पूर्ण युद्ध! हमला!"

"हाँ जी, यह तो हमला-जैसा ही हो गया।"

"मगर मैं कहता हूँ, जो इसे हमला कहता है, वह बेवक़ूफ़ है। हम तो हमलेका मुक़ाबला करनेके लिए बढ़े हैं।"

"इस दृष्टिसे तो हमारा बढ़ना सुरक्षात्मक कारवाई हुआ।"

"मगर सुरक्षात्मक कारवाई कहकर तुम दुनियाकी नजरोंमें धूल नहीं झोंक सकते! जो हुआ है, वह सबको दिख रहा है।"

"हाँ, विल्सनने तो ऐसा कुछ कहा भी है।"

"तुम विल्सनके कहनेकी परवाह क्यों करते हो? जो तुम्हें सही दिखे, करो।"

"बिलकुल ठीक है। जो देशके हितमें हो, वही हमें करना चाहिए।"

"देश-हितकी बात करते हो! देश-हित कोई समझता भी है? सिर्फ देश-हित देखोगे या अन्तरराष्ट्रीय प्रतिक्रियाका भी खयाल रखोगे?"

"ठीक कहते हो। आजकी दुनियामें अन्तरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया देखना भी जरूरी है।"

"मगर मैं कहता हूँ, अन्तरराष्ट्रीय रुख ही देखते रहोगे या देशके भलेकी भी कुछ सोचोगे? अन्तरराष्ट्रीयताकी धुनमें ही तो तुम लोगोंने देशको गारत कर रखा है!"

इस बातचीतमें जो लगातार सहमत होनेकी कोशिश करता रहा, वह मैं हूँ। मैं उससे बहस नहीं करता, मतभेद जाहिर नहीं करता, सिर्फ सहमत होना चाहता हूँ। पर वह सहमत नहीं होने देता। वह कभी किसीको सहमत नहीं होने देता। अगर कोई सहमत होने लगता है तो वह झट असहमतिपर पहुँच जाता है। सहमतिसे भी वह नाराज होता है और असहमतिसे भी। पर असहमतिका विस्फोट बड़ा भयंकर होता है। इसलिए मैं सहमत होते-होते निकल जाता हूँ, जैसे आँधी आनेपर आदमी जमीनपर लेट जाये।

उसने मेरी तरफ़ देखा। मैं कुछ नहीं बोला। दूसरी तरफ देखने लगा। वह मिमियाया—कैसे बेवकूफ़से पाला पड़ा है! खीजा—कैसे बेईमान लोग हैं! क्रोधित हुआ—सबको देखूँगा! तना—मैं किसीकी परवाह नहीं करता! दीन हुआ—कैसा दुर्भाग्य है! दुःखी हुआ—ऐसोंकी चलती है, मेरी नहीं चलती! मनमें फिर तनाव आया। वह अंगुलियोंपर शत्रु गिनता हुआ जल्दी-जल्दी चला गया।

सारी दुनिया गलत है। सिर्फ़ मैं सही हूँ, यह अहसास बहुत दु:ख

देता है। इस बदनामीसे मुझे आराम होती है कि मुझे मेरे होनेका श्रेय मिला, महत्त्व मिला, कोमल भी मिले। दुनियाको इतनी फ़ुरसत होती रहती है कि वह किसी [illegible] एक आदमीको मान्यता देती जाये जो सिर्फ आलोचना [illegible] करता है। उसकी आलोचना होती है। अब ऐसे आदमीको क्या कोई? वह मुझे [illegible] करता है। [illegible] रहता है। [illegible] समाजमें दिन गुजारता है।

इसकी दुनियासे इतनी [illegible] लड़ाई है। पर वह मुझसे ही क्यों लड़ता है? हर बार मुझे गलत सिद्ध क्यों करता है। बात यह है कि पूरी दुनियासे एक साथ नहीं लड़ा जा सकता। दुनियाके हजारों कोने हैं और करोड़ों रहनेवाले हैं। मगर दो देशोंकी लड़ाईमें पूरे देश आपसमें नहीं लड़ते। सिपाहीसे सिपाही लड़ता है। लड़नेके मामलेमें सिपाही देशका प्रतिनिधि होता है। उन कुछ लोगोंको, जिनसे उसकी अक्सर भेंट होती है, उसने दुनियाका प्रतिनिधि मान लिया है। इनमें भी सबसे ज्यादा मुलाकात मुझसे होती है, इसलिए इन कुछका प्रतिनिधि मैं हुआ। इस तरह दुनियाका प्रतिनिधि मैं बन गया। मुझे गलत बताता है तो दुनिया गलत होती है। मुझे गाली देता है तो दुनियाको गाली लगती है। मुझपर खीजता है तो दुनियापर नाराजी जाहिर होती है। मैं दबता हूँ तो दुनियाको दबा देनेका सुख उसे मिलता है। सारी दुनियाकी तरफ़से इस मोर्चेपर मैं खड़ा हूँ और पिट रहा हूँ। वह मुझसे नफ़रत करता है। मगर मुझे ढूँढता है। कुछ दिन नहीं मिलूँ, तो वह परेशान होता है। जिससे नफ़रत है, उससे मिलनेकी इतनी ललक प्रेम-सम्बन्धमें भी नहीं होती। मुझसे मिलकर; मुझे ग़लत बताकर, मुझपर खीजकर और मुझे दबाकर जो सुख उसे मिलता है, उसके लिए वह मुझे तलाशता है। विश्व-विजयके गौरव और सन्तोषके लिए योद्धा दुनिया-भरकी खाक छानते थे। वह कुल चार-पाँच मील लम्बी सड़कोंपर मुझे खोजता है तो दुनियाको जीतनेके लिए कोई ज़्यादा नहीं चलता।

अगर सारी दुनिया गलत है और वह सही है तो मैं गलत हूँ और वह सही है। मैं पहले उससे असहमत भी हो जाता था। तब वह भयंकर रूपसे फूट पड़ता था। उसे गलत माने जानेपर गुस्सा आता है? वह लड़ बैठता था। गाली-गलौजपर आ जाता था। मैंने सहमत होनेकी नीति अपनायी। मैं सहमत होता हूँ तो वह सोचता है, यह कैसे हो सकता है कि मैं और दुनिया, दोनों सही हों! दुनिया सही हो ही नहीं सकती। वह झट ठीक उलटी बात कहकर असहमत हो जाता है। तब वह एकमात्र सही आदमी और दुनिया गलत हो जाती है। मैं फिर सहमत हो जाता हूँ तो वह फिर उस बातपर आ जाता है जिसे वह खुद काट चुका है।

"बहुत भ्रष्टाचार फैला है।"

"हाँ, बहुत फैला है।"

लोग हल्ला ज्यादा मचाते हैं। इतना भ्रष्टाचार है नहीं। यहाँ तो सब सियार हैं। एकने कहा, भ्रष्टाचार तो सब जोरसमे चिल्लाने लगे भ्रष्टाचार!"

"मुझे भी लगता है, लोग भ्रष्टाचारका हल्ला ज्यादा उड़ाते हैं।"

"मगर बिना कारण लोग हल्ला क्यों मचायेंगे जी? होगा तभी तो हल्ला करते हैं। लोग पागल थोड़े ही हैं।"

"हाँ, सरकारी कर्मचारी भ्रष्ट तो हैं।"

"सरकारी कर्मचारियोंको क्यों दोष देते हो? उन्हें तो हम-तुम ही भ्रष्ट करते हैं।"

"हाँ, जनता खुद घूस देती है तो वे लेते हैं।"

"जनता क्या जबरदस्ती उनके गलेमें नोट ठूँसती है? वे भ्रष्ट न हों तो जनता क्यों दे?"

कोई घटना होती है तो वह उसके बारेमें एक दृष्टिकोण बना लेता है और उससे उलटा दृष्टिकोण पहले ही मनमें हमारे ऊपर मढ़ देता है।

[illegible] है। [illegible] [illegible] लिए जिम्मेदार भी हमें [illegible] है। [illegible] किया तो उसे [illegible] हो। [illegible] [illegible] तो उसे [illegible] हो। [illegible] [illegible] मान लिया कि हमने ही [illegible] है। [illegible] नहीं। एक दिन वह मिल गया। ऐसे मिला, जैसे गुरु अपराधियोंसे मिल रहा हो। मिलते ही पूछ बैठा,

"[illegible] फिर बम बरसाना शुरू कर दिया!"

उसने ऐसे देखा, जैसे पुलिस हत्यारेको देखती है।

हमने कहा—"यह बहुत बुरा किया। इससे शान्तिकी आशा फिर नष्ट हो गयी।"

यह एक झटकेसे गलत गया। वह कई दिनोंसे हमें बमबारीका समर्थक मानकर नफरत कर रहा था। मगर हम तो उसकी निन्दा कर रहे थे। अब यह क्या रुख अपनाया। उसे सँभलनेमें ज्यादा देर नहीं लगी। खीजकर बोला—"शान्ति? व्हाट डु यू मीन बाइ शान्ति? यह शब्द झूठा है! सब साले शान्तिकी बात करते हैं और लड़ाईकी तैयारी करते हैं!"

हम चुप। उसे सन्तोष नहीं हुआ। उसने साफ़ रुख अपना लिया—"कह दिया, बुरा किया! क्या बुरा किया? उत्तरसे दक्षिणमें फ़ौज आती है, चीनी हथियार आते हैं। उनके ठिकानोंपर बम गिराये बिना कैसे काम चलेगा?"

"इस दृष्टिसे तो बमबारी ठीक मालूम होती है।"

"क्यों ठीक है? नागरिक क्षेत्रोंपर बम बरसाना ठीक है, यह कहते शर्म आनी चाहिए!"

"हाँ, नागरिक क्षेत्रपर अलबत्ता बम नहीं गिराना चाहिए।"

"मैं कहता हूँ, कहीं भी क्यों गिराना चाहिए? अमेरिकाको क्या हक है इधर आनेका? यह उसके राज्यका हिस्सा नहीं है।"

"ठीक कहते हो। एशियामें अमेरिकाको हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

"मगर बहुत-से बेवकूफ इस नारेको बिना समझे लगाते हैं। वे भूल जाते हैं कि इधर चीन बैठा है जो सबको निगल जायेगा।"

हम चुप हो गये। वह कुछ भुनभुनाता रहा। फिर झटकेसे उठा और अंगुलियोंके कटाव गिनता हुआ फुरतीसे चला गया।

गोरे और सुडौल इस जवानके कपालपर तीन रेखाएँ खिची रहती है। हमेशा तनावमें रहता है। नौकरी उसकी साधारण है। एक कॉलेज-में पढ़ाता है। कॉलेजसे नफ़रत करता है। लौटता है तो जैसे पाप करके लौट रहा हो। प्रिन्सिपलसे, साथियोंसे, विद्यार्थियोंसे नफरत करता है। बग़ीचेके खिले फूलोंसे भी उसे नफरत है। मकान मालिकसे इसलिए नाराज है कि मकान उसका है। नगरपालिकासे सडकके लिए नाराज है। नालेसे मच्छरोंके लिए नाराज है। दुनियासे क्यों नाराज है, यह ठीक वही जानता होगा। मैं अन्दाज ही लगा सकता हूँ।

शुरूमें ही उसने दुनियासे कुछ ज्यादा उम्मीद कर ली होगी। बहुत-से नौजवान मौजूदा हालातोंके सन्दर्भमें महत्त्वाकांक्षा नहीं बनाते। वह अनुपातसे ज्यादा हो जाती है। बहुत-से तो अपने पिताके ज़मानेके सन्दर्भमें महत्त्वाकांक्षा बना लेते है—पिताके ज़मानेमें हर एम० ए० पास प्रोफ़ेसर हो जाता था, अब नहीं होता। मगर उस सन्दर्भमें जो एम० ए० होकर प्रोफ़ेसर बननेका तय कर लेता हैं, वह अकसर निराश होता है। महत्त्वाकांक्षाके कारण वह स्कूलकी नौकरी भी नहीं करता, बेकार रहता है। घुटता है। इस आदमीने भी जवानीके शुरूमें तय कर लिया होगा कि मुझे दुनियासे इतना मिलना चाहिए, यह मेरा हक है। इस

विद्यालयमें कभी वह सबसे ऊपर रहा। उसने योग्यताके दिखावेमें महत्वाकांक्षा मनमें बसाली। उसके गुरुजन-अभिभावकोंमें वह ज्यादा उभार हो गया। उसने स्कूलमें ही विशिष्टतामें अपनेको प्रतिष्ठित कर लिया। सामान्यसे विशिष्ट बननेकी ललक उसमें भरी रहती। उसने मौजूदा जमानेकी स्पर्धा, संघर्ष और षड्यंत्रोंको भी नजर अन्दाज कर दिया। कॉलेजमें पढ़ाना चाहता था तब उसे स्कूल मास्टरी करनी पड़ी। विश्वविद्यालयमें जगह चाहता था तब इस परिस्थितिमें नौकरी मिली। उसने मान लिया कि दुनियाने उसको मौका नहीं दिया। उसके साथ अन्याय किया और दूसरोंके साथ। वह आसपास आगे बढ़ते हुए तुच्छ लोगोंकी भीड़ देखता है और सबसे नफरत करता है। उसका व्यक्तित्व टूटता है, वह उसे जोड़-जोड़कर समेटकर, दुनियाके सामने चुनौती देकर खड़ा होता है। स्थायी असन्तोष उसका अपने-आपको जोड़नेका प्रयत्न है। इससे वह विशिष्ट बने रहनेकी कोशिश करता है क्योंकि विशिष्ट हुए बिना वह जी नहीं सकता।

एक बार ही मैंने उसे सहमत होते पाया है। उसने केन्द्रीय सरकारमें किसी बड़ी नौकरीके लिए आवेदन किया था। वह उसे नहीं मिली। मुझे मिला तो मैंने पूछा।

उसने कहा—"नहीं मिली।"

मैं डर रहा था कि कहीं इसने इसके लिए मुझे ही जिम्मेदार न मान लिया हो। पर उसकी आँखोंमें ऐसा आरोप-भाव नहीं था। मेरी हिम्मत बढ़ी। मैंने कहा—"आजकल पक्षपात बहुत चलता है।"

वह सहमत हो गया। बोला—"ठीक कहते हो। ऊपरके लोग अपनोंको अच्छी जगहोंपर फ़िट करते हैं।"

"और योग्य आदमियोंकी अवहेलना होती है।"

"हाँ, और नालायक़ ऊँचे पदोंपर बिठाये जाते हैं।"

"तभी तो सब जगह स्तर गिर रहा है।"

"अरे भई, खतर तो कुछ रहा नहीं!"

"पता, नहीं, कबतक यह अन्धेर चलेगा!"

"मैं भी यही सोचता हूँ कि आखिर ऐसा कबतक!"

सहमनिके इस दुर्लभ क्षणको मैं बिगड़ने नहीं देना चाहता था। इसलिए इससे पहले कि वह किसी बातपर असहमत हो उठे, मैं चल दिया। वह भी मुड़ा। मगर वह अगुलियोंके कटाव नहीं गिन रहा था।

■ ■

दस दिनका अनशन

१० जनवरी

आज मैंने बन्नूसे कहा—"देख बन्नू, दौर ऐसा आया है कि संसद, कानून, संविधान, न्यायालय सब बेकार हो गये हैं। बड़ी-बड़ी माँगें अनशन और आत्मदाहकी धमकीसे पूरी हो रही हैं। २० सालका प्रजातन्त्र इतना पक गया है कि एक आदमीके मर जाने या भूखा रह जानेकी धमकीसे ५० करोड़ आदमियोंके भाग्यका फ़ैसला हो रहा है। इस वक्त तू भी उस औरतके लिए आमरण अनशन कर डाल।"

बन्नू सोचने लगा। वह राधिका बाबूकी बीवी सावित्रीके पीछे सालोंसे पड़ा है। भगानेकी कोशिशमें एक बार पिट भी चुका है। तलाक दिलवाकर उसे घरमें डाल नहीं सकता, क्योंकि सावित्री, बन्नूसे नफ़रत करती है।

सोचकर बोला—"मगर इसके लिए अनशन हो भी सकता है?"

मैंने कहा—"इस वक्त हर बातके लिए हो सकता है। अभी बाबा सनकीदासने अनशन करके क़ानून बनवा दिया है कि हर आदमी जटा रखेगा और उसे कभी धोयेगा नहीं। तमाम सिरोंसे दुर्गन्ध निकल रही है। तेरी माँग तो बहुत छोटी है—सिर्फ़ एक औरतके लिए।"

सुरेन्द्र वहाँ बैठा था। बोला—"यार, कैसी बात करते हो! किसीकी बीवीको हड़पनेके लिए अनशन होगा? हमें कुछ शर्म तो आनी चाहिए। लोग हँसेंगे।"

मैंने कहा—"अरे यार, शर्म तो बड़े-बड़े अनशनिया साधु-सन्तोंको नहीं

जायी। हम तो मामूली आदमी हैं। जहाँतक हँसनेका सवाल है, गोरक्षा आन्दोलनपर सारी दुनियाके लोग इतना हँस चुके हैं कि—उनका पेट दुखने लगा है। अब कमसे कम १० सालों तक कोई आदमी हँस नहीं सकता। जो हँसेगा वह पेटके दर्दसे मर जायेगा।"

बन्नूने कहा—"सफलता मिल जायेगी ?"

मैंने कहा—"यह तो 'इशू' बनाने पर है। अच्छा बन गया तो औरत मिल जायेगी। चल हम 'एक्सपर्ट'के पास चलकर सलाह लेते हैं। बाबा सनकीदास विशेषज्ञ हैं। उनकी अच्छी 'प्रेक्टिस' चल रही है। उनके निर्देशनमें इस वक्त चार आदमी अनशन कर रहे हैं।"

हम बाबा सनकीदासके पास गये। पूरा मामला सुनकर उन्होंने कहा—"ठीक है। मैं इस मामलेको हाथमें ले सकता हूँ। जैसा कहूँ वैसा करते जाना। तू आत्मदाहकी धमकी दे सकता है ?"

बन्नू काँप गया—"बोला मुझे डर लगता है।"

—"जलना नहीं है रे। सिर्फ धमकी देना है।"

—"मुझे तो उसके नामसे भी डर लगता है।"

बाबाने कहा—"अच्छा तो फिर अनशन कर डाल। 'इशू' हम बनायेंगे।"

बन्नू फिर डरा। बोला—"मर तो नहीं जाऊँगा ?"

बाबाने कहा—"चतुर खिलाड़ी नहीं मरते। वे एक आँख मेडिकल रिपोर्टपर और दूसरी मध्यस्थपर रखते हैं। तुम चिन्ता मत करो। तुम्हें बचा लेंगे और वह औरत भी दिला देंगे।"

११ जनवरी

आज बन्नू आमरण अनशनपर बैठ गया। तम्बूमें धूप-दीप जल रहे हैं। एक पार्टी भजन गा रही है—'सबको सन्मति दे भगवान् !' पहले ही दिन पवित्र वातावरण बन गया है। बाबा सनकीदास इस कलाके

यह कुम्हार है। उन्होंने बन्नूके सामने भी समस्या [illegible] बैठाया है यह बड़ा होशियार है। इसमें बन्नूने कहा है कि 'मेरी आत्मामें पुकार उठ रही है कि मैं अपराधी हूँ। मेरा दूसरा पक्ष सावित्रीमें है। दोनों आत्माओंको मिलाकर एक करो या मुझे भी शरीरसे मुक्त करो। मैं आत्माओंको मिलानेके लिए आमरण अनशनपर बैठा हूँ। मेरी माँग है कि सावित्री मुझे मिले। यदि नहीं मिलती तो मैं अनशनसे इस आत्मतत्त्वको अपनी नश्वर देहसे मुक्त कर दूँगा। मैं सत्यपर हूँ, इसलिए निडर हूँ। सत्यकी जय हो!"

सावित्री गुस्सेमें भरी हुई आयी थी। बाबा सनकीदाससे कहा—"यह हरामजादा मेरे लिए अनशनपर बैठा है न?"

बाबा बोले—"देवी, उसे अपशब्द मत कहो। वह पवित्र अनशन-पर बैठा है। पहले हरामजादा रहा होगा। अब नहीं रहा। वह अनशन कर रहा है।"

सावित्रीने कहा—"मगर मुझसे तो पूछा होता। मैं तो इसपर थूकती हूँ।"

बाबाने सावित्रीसे कहा—"देवी, तू तो 'इश्यू' है। 'इश्यू'से थोड़े ही पूछा जाता है। गोरक्षा आन्दोलनवालोंने गायसे कहाँ पूछा था कि तेरी रक्षाके लिए आन्दोलन करें या नहीं। देवी, तू जा। मेरी सलाह है कि अब तुम या तुम्हारा पति यहाँ न आये। एक-दो दिनमें जनमत बन जायेगा और तब तुम्हारे अपशब्द जनता बरदाश्त नहीं करेगी।"

वह बड़बड़ाती हुई चली गयी।

बन्नू उदास हो गया। बाबाने समझाया—"चिन्ता मत करो। जीत तुम्हारी होगी। अन्तमें सत्यकी ही जीत होती है।"

१३ जनवरी

बन्नू भूखका बड़ा कच्चा है। आज तीसरे ही दिन कराहने लगा।

बन्नू पूछता है—"जयप्रकाश नारायण आये ?"

मैंने कहा—"वे पाँचवें या छठवें दिन आते हैं। उनका नियम है। उन्हें सूचना दे दी है।"

वह पूछता है—"विनोबाने क्या कहा है इस विषयमें ?"

बाबा बोले—"उन्होंने साधन और साध्यकी मीमांसा की है, पर थोड़ा तोड़कर उनकी बातको अपने पक्षमें उपयोग किया जा सकता है।"

बन्नूने आँखें बन्द कर लीं। बोला—"भैया जयप्रकाश बाबूको जल्दी बुलाओ।"

आज पत्रकार भी आये थे। वही दिमागपच्ची करते रहे।

पूछने लगे—"उपावासका हेतु कैसा है? क्या वह सार्वजनिक हितमें है?"

बाबाने कहा—"हेतु अब नहीं देखा जाता। अब तो इसके प्राण बचानेकी समस्या है। अनशनपर बैठना इतना बड़ा आत्म-बलिदान है कि हेतु भी पवित्र हो जाता है।"

मैंने कहा—"और सार्वजनिक हित इसमें होगा। कितने ही लोग दूसरेकी बीबी छीनना चाहते हैं, मगर तरकीब उन्हें नहीं मालूम। यह अनशन अगर सफल हो गया, तो जनताका मार्गदर्शन करेगा।"

१४ जनवरी

बन्नू और कमजोर हो गया है। वह अनशन तोड़नेकी धमकी हम लोगोंको देने लगा है। इससे हम लोगोंका मुँह काला हो जायेगा। बाबा सनकीदासने उसे बहुत समझाया।

आज बाबाने एक और कमाल कर दिया। किसी स्वामी रमानन्दका वक्तव्य अखबारोंमें छपवाया है। स्वामीजीने कहा है कि मुझे तपस्याके कारण भूत और भविष्य दिखता है। मैंने पता लगाया है बन्नू पूर्व जन्ममें ऋषि था और सावित्री ऋषिकी धर्मपत्नी। बन्नूका नाम उस जन्ममें ऋषि वनमानुस था। उसने तीन हजार वर्षोंके बाद अब फिर नरदेह

धारण की है। बानिकालिका इसमें जन-जागरणका अद्भुत है। यह घोर अधर्म है कि एक ऋषिकी पत्नीको राधिकाबाबू-जैसा साधारण आदमी अपने घरमें रखे। समस्त धर्मप्राण जनतासे मेरा आग्रह है कि इस अधर्मको न होने दें।

इस वक्तव्यका अच्छा असर हुआ। कुछ लोग 'धर्मकी जय हो!' नारे लगाते पाये गये। एक भीड़ राधिका बाबूके घरके सामने नारे लगा रही थी—

"राधिकाप्रसाद—पापी है! पापीका नाश हो! धर्मकी जय हो!"

महिलाओंने मन्दिरोंमें बन्नूकी प्राण-रक्षाके लिए प्रार्थनाका आयोजन करा दिया है।

१५ जनवरी

रातको राधिका बाबूके घरपर पत्थर फेंके गये।

जनमत बन गया है।

स्त्री-पुरुषोंके मुखसे ये वाक्य हमारे एजेण्टोंने सुने—

"बेचारेको पाँच दिन हो गये। भूखा पड़ा है।"

"धन्य है इस निष्ठाको।"

"मगर उस कठकरेजीका कलेजा नहीं पिघला।"

"उसका मरद भी कैसा बेशरम है।"

"सुना है पिछले जन्ममें कोई ऋषि था।"

"स्वामी रसानन्दका वक्तव्य नहीं पढ़ा!"

"बड़ा पाप है ऋषिकी धर्मपत्नीको घरमें डाले रखना।"

आज ग्यारह सौभाग्यवतियोंने बन्नूको तिलक किया और आरती उतारी। बन्नू बहुत खुश हुआ। सौभाग्यवतियोंको देखकर उसका जी उछलने लगता है।

अखबार अनशनके समाचारोंसे भरे हैं।

आज एक भीड़ हमने प्रधान मन्त्रीके बँगलेपर हस्तक्षेपकी माँग करने और बन्नूमें प्राण बचानेकी अपील करने भेजी थी। प्रधानमन्त्रीने मिलनेसे इन्कार कर दिया।

देखते हैं कबतक नहीं मिलते।

शामको जयप्रकाश नारायण आ गये। नाराज थे। कहने लगे—"किस-किसके प्राण बचाऊँ मैं? मेरा क्या यही धन्धा है? रोज कोई अनशनपर बैठ जाता है और चिल्लाता है प्राण बचाओ। प्राण बचाना है तो खाना क्यों नहीं लेता? प्राण बचानेके लिए मध्यस्थकी कहाँ जरूरत है? यह भी कोई बात है! दूसरेकी बीवी छीननेके लिए अनशनके पवित्र अस्त्रका उपयोग किया जाने लगा है।"

हमने समझाया—"यह 'इशू' जरा दूसरे किस्मका है। आत्मासे पुकार उठी थी।"

वे शान्त हुए। बोले—"अगर आत्माकी बात है तो मैं इसमें हाथ डालूँगा।"

मैंने कहा—"फिर कोटि-कोटि धर्मप्राण जनताकी भावना इसके साथ जुड़ गयी है।"

जयप्रकाश बाबू मध्यस्थता करनेको राजी हो गये। वे सावित्री और उसके पतिसे मिलकर फिर प्रधान-मन्त्रीसे मिलेंगे।

बन्नू बड़े दीनभावसे जयप्रकाश बाबूकी तरफ देख रहा था।

बादमें हमने उससे कहा—"अबे साले, इस तरह दीनतासे मत देखा कर। तेरी कमजोरी ताड़ लेगा तो कोई भी नेता तुझे मुसम्मीका रस पिला देगा। देखता नहीं है कितने ही नेता झोलोंमें मुसम्मी रखे तम्बूके आसपास घूम रहे हैं।"

१६ जनवरी

जयप्रकाश बाबूकी 'मिशन' फ़ेल हो गयी। कोई माननेको तैयार नहीं

है। [illegible] मन्त्रीने कहा—"हमारी बन्नूके साथ सहानुभूति है, पर हम कुछ नहीं कर सकते। इसमें [illegible] झुक जाएँ, तब शान्तिसे वार्ता-द्वारा समस्याका हल ढूँढ़ा जायेगा।"

हम निराश हुए। बाबा सनकीदास निराश नहीं हुए। उन्होंने कहा—"पहले सब लोगोंको नामंजूर करने दो यही प्रथा है। अब आन्दोलन तीव्र करो। अखबारोंमें छपवाओ कि बन्नूकी पेशाबमें 'एसीटोन' आने लगा है। इसकी हालत चिन्ताजनक है। वक्तव्य छपवाओ कि हर कीमतपर बन्नूके प्राण बचाये जायें। सरकार बैठी-बैठी क्या देख रही है? उसे तुरन्त कोई कदम उठाना चाहिए जिससे बन्नूके महत्त्वपूर्ण प्राण बचाये जा सकें।"

बाबा अद्भुत आदमी हैं। कितनी तरकीबें उनके दिमागमें हैं। कहते हैं—"अब आन्दोलनमें जातिवादका पुट देनेका मौका आ गया है। बन्नू ब्राह्मण है और राधिकाप्रसाद कायस्थ। ब्राह्मणोंको भड़काओ और इधर कायस्थोंको। ब्राह्मण सभाका मन्त्री आगामी चुनावमें खड़ा होगा। उससे कहो कि यही मौका है ब्राह्मणोंके वोट इकट्ठे ले लेनेका।"

आज राधिका बाबूकी तरफसे प्रस्ताव आया था कि बन्नू सावित्रीसे राखी बँधवा ले।

हमने नामंजूर कर दिया।

१७ जनवरी

आजके अखबारोंमें ये शीर्षक हैं—

"-बन्नूके प्राण बचाओ !
बन्नूकी हालत चिन्ताजनक !
मन्दिरोंमें प्राण-रक्षाके लिए प्रार्थना !"

एक अखबारमें हमने विज्ञापन रेटपर यह भी छपवा लिया—

"कोटि-कोटि धर्म-प्राण जनताकी माँग—!

बन्नूकी प्राण-रक्षा की जाये !
बन्नूकी मृत्युके भयंकर परिणाम होंगे !"

ब्राह्मणसभाके मन्त्रीका वक्तव्य छप गया। उन्होंने ब्राह्मण जातिकी इज्जतका मामला इसे बना लिया था। सीधी कार्यवाहीकी धमकी दी थी।

हमने चार गुण्डोंको कायस्थोंके घरोंपर पत्थर फेंकनेके लिए तय कर लिया है।

इसमें निपटकर वही लोग ब्राह्मणोंके घरपर पत्थर फेंकेंगे।

पैसे बन्नूने वेणगोंमें दे दिये हैं।

बाबाका कहना है कि कल या परसों तक कर्फ्यू लगवा देना चाहिए। दफ़ा १४४ तो लग ही जाय। इससे 'केस' मज़बूत होगा।

१८ जनवरी

रातको ब्राह्मणों और कायस्थोंके घरोंपर पत्थर फिंक गये।

सुबह ब्राह्मणों और कायस्थोंके दो दलोंमें जमकर पथराव हुआ।

शहरमें दफ़ा १४४ लग गयी।

सनसनी फैली हुई है।

हमारा प्रतिनिधि मण्डल प्रधान-मन्त्रीसे मिला था। उन्होंने कहा—"इसमें कानूनी अड़चनें हैं। विवाह-कानूनमें संशोधन करना पड़ेगा।"

हमने कहा—"तो संशोधन कर दीजिए।" अध्यादेश जारी करवा दीजिए। अगर बन्नू मर गया तो सारे देशमें आग लग जायेगी।"

वे कहने लगे—"पहले अनशन तुड़वाओ ?"

हमने कहा—"सरकार सैद्धान्तिक रूपसे माँगको स्वीकार कर ले और एक कमेटी बिठा दे, जो रास्ता बताये कि वह औरत इसे कैसे मिल सकती है।"

सरकार अभी स्थितिको देख रही है। बन्नूको और कष्ट भोगना होगा।

मामला अभीतक ठण्डा रहा । बाजारमें 'इफ़ेक्ट' आ गया है ।

छुटपुट झगड़े हो रहे हैं ।

आज हमने पुलिस चौकीपर पत्थर फिंकवा दिये । इसका अच्छा असर हुआ ।

'बन्नू बचाओ'—की माँग आज और बढ़ गयी ।

१९ जनवरी

बन्नू बहुत कमजोर हो गया है । घबराता है । कहीं मर न जाय ।

बन्नूने कहा है कि तुम लोगोंने मुझे फँसा दिया है । यहीं वक्तव्य दे दिया तो हम लोग 'एक्सपोज़' हो जायेंगे ।

कुछ जल्दी ही करना पड़ेगा । हमने उससे कहा कि अब अगर वह यों ही अनशन छोड़ देगा तो जनता उसे मार डालेगी ।

प्रतिनिधि मण्डल फिर मिलने जायगा ।

२० जनवरी

'इफ़ेक्ट'

सिर्फ़ एक बस जलायी जा सकी ।

बन्नू अब सँभल नहीं रहा है ।

उसकी तरफ़से हम ही कह रहे हैं कि 'वह मर जायेगा, पर झुकेगा नहीं !''

सरकार भी घबड़ायी मालूम होती है ।

साधुसंघने आज माँगका समर्थन कर दिया ।

ब्राह्मण समाजने अल्टीमेटम दे दिया । १० ब्राह्मण आत्मदाह करेंगे ।

सावित्रीने आत्महत्याकी कोशिश की थी, पर बचा ली गयी ।

बन्नूके दर्शनके लिए लाइन लगी रहती है ।

राष्ट्रसंघके महामन्त्रीको आज तार कर दिया गया।

जगह-जगह प्रार्थना-सभाएँ होती रही।

डॉ० लोहियाने कहा है कि जबतक यह सरकार है, तबतक न्यायोचित माँगें पूरी नहीं होंगी। बन्नूको चाहिए कि वह सावित्रीके बदले इस सरकारको ही भगा ले जाय।

२१ जनवरी

बन्नूकी माँग सिद्धान्ततः स्वीकार कर ली गयी।

व्यावहारिक समस्याओंको सुलझानेके लिए एक कमेटी बना दी गयी है।

भजन और प्रार्थनाके बीच बाबा सनकीदासने बन्नूको रस पिलाया। नेताओंकी मुसम्मियाँ झोलोंमें ही सूख गयीं। बाबाने कहा कि—"जन-तन्त्रमें जनभावनाका आदर होना चाहिए। इस प्रश्नके साथ कोटि-कोटि जनोंकी भावनाएँ जुड़ी हुई थीं। अच्छा ही हुआ जो शान्तिसे समस्या सुलझ गयी, वरना हिंसक क्रान्ति हो जाती।"

ब्राह्मण सभाके विधानसभाई उम्मीदवारने बन्नूसे अपना प्रचार करानेके लिए सौदा कर लिया है। काफी बड़ी रकम दी है। बन्नूकी कीमत बढ़ गयी।

चरण छूते हुए नर-नारियोंसे बन्नू कहता है—"सब ईश्वरकी इच्छासे हुआ। मैं तो उसका माध्यम हूँ।"

नारे लग रहे हैं—सत्यकी जय! धर्मकी जय!

■ ■

अमरता

लेखक रातको अबू-बिन-आदमकी यह कहानी पढ़ते-पढ़ते सो गया "एक रात आदमके बेटे अबूके कमरेमें एकाएक तीव्र प्रकाश हुआ। और एक फरिश्ता प्रकट हुआ। उसके हाथमें एक बही थी। उसने अबूसे कहा—'मैं उन लोगोंके नाम लिख रहा हूँ, जो ईश्वरसे प्यार करते हैं।' अबू-बिन-आदमने कहा—"मेरा नाम उन लोगोंमें लिख लो, जो अपने साथी मानवोंसे प्यार करते हैं'—फरिश्ता अदृश्य हो गया। दूसरी रात वह फिर आया और अबूने देखा कि ईश्वरके प्रेमियोंमें सबके ऊपर उसीका नाम है।" आधी रातको एकाएक लेखककी नींद खुली और उसने देखा कि कमरेमें तीव्र प्रकाश भर गया है। उसने आँखें मलीं, तो उसे कमरेमें एक फ़रिश्ता दिखा—श्वेत वस्त्र, श्वेत दाढ़ी और केश, मुखपर स्वर्गिक आभा !

लेखकने पूछा—"हे दिव्य पुरुष ! आप कौन हैं और यहाँ किस प्रयोजनसे आये हैं ?"

फ़रिश्ता बोला—"वत्स, मैं हिन्दी साहित्यका इतिहास हूँ और प्रतिभाओंको अमर करने निकला हूँ।"

लेखक प्रसन्न हुआ। हाथ जोड़कर कहने लगा—"देव, मैं भी साहित्य का एक सेवक हूँ। क्या आप मुझे अमर कर सकते हैं।"

फ़रिश्तेने निर्मल मुसकानके साथ कहा—"इसीलिए तो मैं यहाँ आया हूँ।"

उसने अपने हाथकी बही खोलकर लेखकके सामने रख दी और

कहा—"देखो, इसमें मैं उन लोगोंके नाम लिखता जाता हूँ, जिन्हें अमर होना है। तुम भी इसमें अपना नाम लिख दो।"

लेखक नामोंको पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते वह चौंका। उसके मुखपर विषाद छा गया। फिर घृणा आयी और फिर रोष।

इधर फरिश्तेने पेंसिल बढ़ाते हुए कहा—"लो पेंसिल! लिख दो अपना नाम।"

लेखकने गरदन उठायी और पूछा—"क्या तुम्हारे पास रबर नहीं है?"

फ़रिश्तेने कहा—"है, रबर भी है। पर नियम यह है कि तुम रबर और पेंसिलमेंसे कोई एक ही ले सकते हो।"

लेखकने अविचलित भावसे कहा—"तो मुझे रबर ही दे दो। पेंसिल नहीं चाहिए।"

फरिश्तेने रबर दे दी।

लेखकने ३-४ नाम मिटा दिये।

फरिश्ता अदृश्य हो गया। लेखक बड़ी शान्तिसे सो गया।

दूसरी रात फ़रिश्ता फिर आया और उसने बही खोलकर लेखकके सामने रख दी।

लेखकने देखा कि उसका नाम युग-प्रवर्त्तकोंमें लिखा हुआ है।

वह बहुत प्रसन्न हुआ।

सहसा फ़रिश्तेने अपनी नकली दाढ़ी-मूँछ निकाल फेंकी और लेखकने पहिचाना कि वह स्थानीय इण्टरमीडियेट कालेजका हिन्दीका अध्यापक है।

■ ■

होनहार

एक स्त्री अपने लड़केको एक ज्योतिषीके पास ले गयी और बोली—"पण्डितजी, इस लड़केका भविष्य बतलाइए। आगे चलकर यह क्या होगा ?"

ज्योतिषीने कहा "माता, तू इसके कुछ लक्षण बता। इससे मुझे कुछ निर्णय करना होगा ?"

स्त्रीने कहा—"यह सपनोंमें एकाएक चिल्ला पड़ता है—जागो जागो ! आगे बढ़ो ! आगे बढ़ो !"

ज्योतिषीने पूछा—"अच्छा, जब यह ऐसा चिल्लाता है, तब स्वयं क्या करता है ?"

स्त्री बोली—"यह तो सोया रहता है—पत्थर-सरीखा। नींदमें चिल्लाता है।"

ज्योतिषीने तनिक सोचकर उत्तर दिया "माँ, तेरे बेटेका भविष्य बहुत उज्ज्वल है।"

"क्या बनेगा यह, पण्डित जी ?"

"यह किसी प्रजातन्त्रका नेता हो जायेगा।"

हृदय

एक आदमी कहता था कि वह हर काम हृदयकी आवाजके अनुसार करता है। वह एक कॉलेजका प्रिन्सिपल था। उसने एक योग्य आचार्यको निकालकर उसके स्थानपर किसी अज्ञात कारणसे एक अयोग्यको नियुक्त कर लिया। उससे पूछा तो उसने कहा कि उसके हृदयकी आवाज थी कि ऐसा करनेमें संस्थाका हित है। एक चपरासीका सप्ताह-भरका वेतन उसने काट लिया। हृदयकी आवाजपर ही उसने एक लड़कीकी शादी एक वृद्धसे करा दी। कारण यही बताया कि यह उसके हृदयकी आवाज थी। इसी प्रकारके काम वह हृदयकी आवाज सुनकर किया करता था। उसका बड़ा रोब था। कितने आदमी ऐसे हैं, जो हृदयकी आवाजपर काम करते हैं।

एक दिन एक दुर्घटनामें उसकी मृत्यु हो गयी।

लाशका पोस्टमार्टम हुआ तो डॉक्टरोंने देखा कि उसके सीनेमें वहाँ हृदय ही नहीं है। डॉक्टरोंके सामने बड़ी समस्या खड़ी हुई कि यह आदमी बिना हृदयके कैसे जीवित रहा।

सारे शरीरमें खोज की। बड़ी मुश्किलसे उसका हृदय तलुएमें मिला।

■ ■

उपदेश

'सेवकजी' नारी आन्दोलनके बड़े समर्थक थे। स्त्रीकी सामाजिक स्वतन्त्रताके लिए वे कठोर संघर्ष करते थे।

एक सभामें उन्होंने भाषण दिया—''....हमें नारीको स्वतन्त्रता देना होगा; उसके व्यक्तित्वको स्वीकारना होगा। उसे घरमें क़ैद करके हमने सदियोंसे समाजके आधे भागको निष्क्रिय कर दिया है। अब समय बदल गया है। नारीको हमें बाहर निकालकर समाजके मंगल कार्योंमें हाथ बँटाने देना चाहिए।''

भाषणकी सबने प्रशंसा की।

'सेवकजी' घर पहुँचे। थोड़ी देर बाद लड़केने आकर कहा—''पिता जी, अम्मा नारी मंगल समितिके कार्यक्रममें भाग लेने जाना चाहती हैं।''

'सेवकजी'की आँखें चढ़ गयीं। बोले—''कह दे, कहीं नहीं जाना है। जहाँ देखो वहाँ, मुँह उठाये चल दीं। कुछ लाज-शरम भी है या नहीं।''

लड़का था वाचाल। उसने कहा—''पिता जी, अभी तो आपने सभामें कहा था कि स्त्रीको बाहर समाजमें निकलना चाहिए।''

'सेवकजी'ने समझाया ''तू अभी नादान है। बात समझता नहीं है। अरे, जब यह कहा जाय कि स्त्री बाहर निकले, तब यह अर्थ होता है कि दूसरोंकी स्त्रियाँ निकलें, अपनी नहीं।''

■ ■

दुःख

एक दफ्तरके कर्मचारी उस दिन बड़े दुःखी थे। उनके बीचके एक आदमीका तबादला हो गया था। वह आदमी बड़ा भला था। कर्मचारियोंने उसकी विदाईके लिए एक आयोजन किया। कई साथियोंने भाषण दिये; कहा कि आज ऐसा लग रहा है, मानो हमारा सगा भाई बिछुड़ रहा है।

एक कोनेमें बैठा एक आदमी बहुत रो रहा था। उसके आँसू थमते ही नहीं थे।

किसीने उससे कहा—"क्यों भाई, इसके जानेका सबसे अधिक दुःख तुम्हींको मालूम होता है।"

"हाँ" सिसकते हुए उसने उत्तर दिया।

"तो इससे सबसे अधिक प्रेम तुम्हीं करते हो।"

"नहीं, यह बात नहीं है।"

"तो फिर इस तरह क्यों रो रहे हो।"

उसने भरे गलेसे कहा—"इसलिए कि यह साला तरक्कीपर जा रहा है।

■ ■

कवि 'अनंग' जीवनके अन्तिम छोर आ पहुँचा था।

डाक्टरोंने कह दिया कि ये अधिकसे अधिक घण्टे-भरके मेहमान हैं। अनंगजीकी पत्नीने कहा कि कुछ ऐसी दवा दे दें जिससे ये ५-६ घण्टे जीवित रह सकें ताकि शामकी गाड़ीसे आनेवाले बेटेसे मिल लें। डाक्टरोंने कहा कि कोई भी दवा इन्हें घण्टे-भरसे अधिक जीवित नहीं रख सकती।

इसी समय अनंगजीके एक मित्र आये। वे बोले—"मैं इन्हें मजेमें कई घण्टे जीवित रख सकता हूँ।"

डाक्टरोंने हँसकर कहा—" यह असम्भव है।"

मित्रने कहा—"खैर, मुझे कोशिश तो कर लेने दीजिए! आप लोग सब बाहर हो जाइए।"

सब बाहर चले गये। मित्र अनंगजीके पास बैठे और बोले—"अनंगजी, अब तो आप सदाके लिए चले।" यह सुललित कण्ठ अब कहाँ सुननेको मिलेगा! जाते-जाते कुछ सुना जाइए!"

यह सुनते ही अनंगजी उठकर बैठ गये और बोले—"मन तो नहीं है पर आपकी प्रार्थना टाली भी नहीं जा सकती। अच्छा, अलमारीमेंसे मेरी कापी निकालिए न।"

मित्रने कापी उठाकर हाथमें दे दी और अनंगजी कविता-पाठ करने लगे। घण्टेपर घण्टे बीतते गये। शामकी गाड़ी आ गयी और लड़का भी आ गया। उसने कमरेमें घुसते ही देखा कि पिताजी कविता पढ़ रहे हैं और उनके मित्र मरे पड़े हैं।

दण्ड

एक कलाकारने कोई बड़ा अपराध किया। वह राजाके सामने उपस्थित किया गया। राजाने मन्त्रीसे पूछा—"इसे तीन वर्षकी कैद दे दी जाये?"

मन्त्रीने कहा—"अपराध बहुत जघन्य है। तीन साल बहुत कम है।"

"तो दस साल सही।"

"दस साल भी कम सजा है।"

"तो आजीवन कारावास?"

नहीं, यह भी कम है।"

"तो फाँसी दे दी जाये?"

"नहीं, फाँसी भी कम सजा है।"

राजाने खीझकर कहा—"फाँसीसे बड़ी सजा क्या होगी तुम्ही बताओ।"

मन्त्रीने कहा—"इसे कहीं बिठाकर इसके सामने दूसरे कलाकारकी प्रशंसा करनी चाहिए।"

■ ■

रोटी

प्रजातन्त्रके राजाने जहाँगीरकी तरह अपने महलके सामने एक जंजीर लटका रखी थी। घोषणा करा दी थी कि जिसे फरियाद करना हो, वह जंजीर खींचे, राजा आकर खुद फरियाद सुनेंगे।

एक दिन अत्यन्त दुबला, कमजोर आदमी लड़खड़ाता वहाँ आया और उसने निर्बल हाथोंसे जंजीर खींची। प्रजातन्त्रका राजा तुरन्त महल-की बालकनीपर आया और बोला—"फरियादी, क्या चाहते हो ?"

फरियादी बोला—"राजा, तेरे राजमें हम भूखे मर रहे हैं। हमें अरसेसे खाना नहीं मिलता। मुझे रोटी चाहिए। मैंने कई दिनोंसे अन्न नहीं खाया। मैं रोटी माँगने आया हूँ।"

राजाने बड़ी सहानुभूतिसे कहा—"भाई, तेरे दुःखसे मेरा हृदय द्रवित हो गया है। मैं तेरी रोटीकी समस्यापर आज ही एक उपसमिति बिठाता हूँ। पर तुझसे मेरी एक प्रार्थना है—उपसमितिकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेके पहले तू मरना मत।"

मित्रता

दो लेखक थे। आपसमें खूब झगड़ते थे। एक दूसरेको उखाड़नेमें लगे रहते। मैंने बहुत कोशिशें की कि दोनोंमें मित्रता हो जाये, पर व्यर्थ।

मैं तीन-चार महीनेके लिए बाहर चला गया। लौटकर आया तो देखा कि दोनोंमें बड़ी दाँत-काटी रोटी हो गयी। साथ बैठते हैं, साथ चाय पीते हैं। घण्टों गपशप करते रहते हैं। बड़ा प्रेम हो गया है।

एक आदमीसे मैंने पूछा—"क्यों भाई, इनमें अब ऐसी गाढ़ी मित्रता कैसे हो गयी ? इस प्रेमका क्या रहस्य है ?"

उत्तर मिला—"ये दोनों मिलाकर अब तीसरे लेखकको उखाड़नेमें लगे हैं।"

देव-भक्ति

एक शहरकी बात है। शहरमें गणेशोत्सव बड़ी धूमसे मनाया जाता है। वहाँ कुछ ऐसी प्रथा चली है, कि हर जातिके लोग अपने अलग गणेशजी रखते हैं। इस तरह ब्राह्मणोंके अलग गणेश होते हैं, अग्रवालोंके अलग, तेलियोंके अलग, कुम्हारोंके अलग। पचीस-तीस तरहके गणेशोत्सव होते हैं, और दस-दस दिनों तक खूब भजन-कीर्तन, पूजा-स्तुति, आरती, गायन-वादन होते हैं। आखिरी दिन गणेश-विसर्जनके लिए जो जुलूस निकलता है, उसमें सबसे आगे ब्राह्मणोंके गणेशजी होते हैं।

इस साल ब्राह्मणोंके गणेशजीका रथ उठनेमें जरा देर हो गयी। इसलिए तेलियोंके गणेशजी आगे हो गये।

जब यह बात ब्राह्मणोंको मालूम हुई, तो वे बड़े क्रोधित हुए। बोले—"तेलियोंके गणेशकी 'ऐसी-तैसी'। हमारा गणेश आगे जायेगा।"

जाति

कारखाना खुला और कर्मचारियोंके लिए बस्ती बन गयी।

ठाकुरपुरासे ठाकुर साहब और ब्राह्मणपुरासे पण्डितजी कारखानेमें काम करने लगे और पास-पासके ब्लॉकमें रहने लगे।

ठाकुर साहबका लड़का और पण्डितजीकी लड़की दोनों जवान थे। उनमें पहचान हुई। पहचान इतनी बढ़ी कि वे शादी करनेको तैयार हो गये।

जब प्रस्ताव उठा तो पण्डितजीने कहा—"ऐसा कहीं हो सकता है? ब्राह्मणकी लड़की ठाकुरसे शादी करे! जाति चली जायेगी।"

ठाकुर साहबने भी कहा कि "ऐसा हो नहीं सकता। परजातिमें शादी करनेसे हमारी जाति चली जायेगी।"

किसीने उन्हें समझाया कि लड़के-लड़की बड़े हैं, पढ़े-लिखे हैं, समझदार हैं। उन्हें शादी कर लेने दो। अगर उनकी शादी नहीं हुई, तो भी वे चोरी-छिपे मिलेंगे और तब जो उनका सम्बन्ध होगा, वह तो व्यभिचार कहा जायेगा।

इसपर ठाकुर साहब और पण्डितजीने कहा—"होने दो। व्यभिचारसे जाति नहीं जाती; शादीसे जाती है।"

■ ■

लिफ़्ट

वे दोनों एक ही विभागमें बराबरके पदपर थे। उनके दफ़्तर दूसरी मंजिलपर थे। वे अक्सर फाटकपर मिल जाते और साथ-साथ सीढ़ियाँ चढ़कर अपने कमरोंमें पहुँच जाते।

विभागमें एक ऊँचा पद खाली हुआ। दोनों उसके लिए कोशिश करने लगे।

ऊँचे पदका दफ़्तर चौथी मंजिलपर था।

उनमेंसे एकको छुट्टी लेकर अपने गाँव जाना पड़ा। दूसरा कोशिश करता रहा। उसकी कोशिशके प्रभावके सम्बन्धमें दफ़्तरमें कानाफूसी होने लगी। पहला छुट्टीसे लौटकर आया, तो उसके कानमें भी लोगोंने वे बातें कह दीं, जो वे एक-दूसरेसे कहा करते थे।

फाटकपर वे दोनों फिर मिल गये। पहला सीढ़ीकी तरफ़ मुड़ा और दूसरा लिफ़्टकी तरफ़।

पहलेने कहा—"क्यों, आज सीढ़ियोंसे नहीं चढ़ोगे?"

दूसरेने कहा—"मुझे तो अब चौथी मंजिलपर जाना है न। वहाँ सीढ़ियोंसे नहीं चढ़ा जाता। लिफ़्टसे जाना चाहिए।"

पहलेने कहा—"हाँ, भाई, लिफ़्टसे चढ़ो। हमारी लिफ़्ट तो ३५ सालकी और मोटी हो गयी है।"

■ ■

खेती

सरकारने घोषणा की कि हम अधिक अन्न पैदा करेंगे और एक सालमें खाद्यमें आत्म-निर्भर हो जायेंगे।

दूसरे दिन कागजके कारखानोंको दस लाख एकड़ कागजका ऑर्डर दे दिया गया।

जब कागज आ गया, तो उसकी फ़ाइलें बना दी गयीं। प्रधानमन्त्रीके सचिवालयसे फाइल खाद्यविभागको भेजी गयी। खाद्य-विभागने उसपर लिख दिया कि इस फाइलमें कितना अनाज पैदा होना है और उसे अर्थ-विभागको भेज दिया।

अर्थ-विभागमें फाइलके साथ नोट नत्थी किये गये और उसे कृषि-विभागमें भेज दिया गया।

कृषि-विभागमें उसमें बीज और खाद डाल दिये गये और उसे बिजली-विभागको भेज दिया गया।

बिजली-विभागने उसमें बिजली लगायी और उसे सिंचाई-विभाग भेज दिया गया।

सिंचाई-विभागमें फ़ाइलपर पानी डाला गया।

अब वह फ़ाइल गृह-विभागको भेज दी गयी। गृह-विभागने उसे एक सिपाहीको सौंपा और पुलिसकी निगरानीमें वह फ़ाइल राजधानीसे लेकर तहसील तकके दफ्तरोंमें ले जायी गयी। हर दफ्तरमें फाइलकी आरती करके उसे दूसरे दफ्तरमें भेज दिया जाता।

जब फ़ाइल सब दफ्तर घूम चुकी तब उसे पकी जानकर फूड कार्पो-

देहातके दफ्तरमें भेज दिया गया और प्रचार कर दिया गया कि इसकी फसल काट ली जाये। इस तरह कई लाख एकड़ कागजकी फाइलोंकी फसल पककर फूड कार्पोरेशनके पास पहुँच गयी।

एक दिन एक किसान सरकारसे मिला और उसने कहा—"हुजूर, हम किसानोंको आप जमीन, पानी और बीज दिला दीजिए और अपने अफसरोंसे हमारी रक्षा कर लीजिए, तो हम देशके लिए पूरा अनाज पैदा कर देंगे।"

सरकारी प्रवक्ताने जवाब दिया—"अन्नकी पैदावारके लिए किसान-की अब जरूरत नहीं है। हम कई लाख एकड़ कागजपर अन्न पैदा कर रहे हैं।"

कुछ दिनों बाद सरकारने बयान दिया—"इस साल तो सम्भव नहीं हो सका, पर आगामी साल हम जरूर खाद्यमें आत्मनिर्भर हो जायेंगे।"

और उसी दिन बीस लाख एकड़ कागजका आर्डर और दे दिया गया।

[illegible] और [illegible] लिख दिया गया कि [illegible]

[illegible] एकड़ [illegible]

[illegible]

[illegible] लिया और उनसे कहा—"[illegible] दीजिए और [illegible]

[illegible], तो हम देशके लिए [illegible]

[illegible] दिया—"[illegible] देशवासके लिए किसान [illegible]

[illegible] एकड़ [illegible] अन्न पैदा [illegible]

[illegible] जवाब दिया—"इस साल तो सम्भव नहीं। [illegible] मामलेमें आत्मनिर्भर हो जायेंगे।"

[illegible] एकड़ [illegible] ऑर्डर और दे दिया।